प्रथम अध्याय

समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य की पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से प्रारम्भ के हिन्दी कथा-साहित्य ने अपेक्षाकृत अल्प समय में ही पर्याप्त रूप से प्रगति की है। तिलिस्मी, ऐयारी, जासूसी, ऐतिहासिक आदि पृष्ठभूमि से आरम्भ हिन्दी कथा-साहित्य प्रेमचन्द्र के स्पर्श से उस मुकाम तक पहुँचा, जो कि वर्तमान में विश्व कथा-साहित्य के परिदृष्य में अपनी विशिष्ट हैसियत रखता है। युगानुकूल परिवर्तन के साथ प्रेमचन्द्र ने यथार्थ जीवन के व्यापक फलक को अभिव्यक्ति प्रदान कीं। प्रेमचन्द्र के साथ-साथ जयशंकर प्रसाद ने भी अपने तरीके से हिन्दी कथा-साहित्य को विशेष दिशा दीं उनके पश्चात भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र इत्यादि ने कथा-साहित्य के फलक को और अधिक विस्तृत धरातल प्रदान किया। इन रचनाकारों के साथ चलते हुए स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद कथा-साहित्य के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन लक्षित होता है जो, भारत की स्वतंत्रता के बाद निर्मित नयी परिस्थितियों का परिणाम था।

साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान युग तक जिन-विधाओं का उद्‌भव और विकास हुआ है, उनमें कथा-साहित्य का अन्यतम स्थान है। कहानी और उपन्यास कथा-साहित्य की प्रमुख विधाएँ हैं। साहित्य की सभी विधाओं में सम्भवत: कहानी एक मात्र एक ऐसा माध्यम है, जो अपने लघु आकार में भी वृहत जीवन को अभिव्यंजित करने में समर्थ है।[1] आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य की स्थिति को गहराई और विस्तार से समझनें के लिए समीचीन यह है कि, सर्वप्रथम कहानी साहित्य के स्वरूप से परिचय प्राप्त किया जाये।

प्राचीन साहित्य में कहानियों के स्थान पर 'कथा', 'आख्यान' आदि शब्द प्रयुक्त हुए। इस विधा का अतुल भण्डार 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'पुराण' तथा

'बृहतकथा' में सुरक्षित है।[2]

हिन्दी में 'कहानी', 'कथा', 'आख्यायिका' और 'आख्यान' शब्दों का प्रयोग साधारण रूप से समान अर्थ में होता है, परन्तु यदि इसे विशिष्ट रूप से देखा जाये तो इनमें सूक्ष्म अन्तर भी दृष्टिगत होता है। प्राचीन कथा-साहित्य, आख्यायिका आदि से आधुनिक कहानी बिल्कुल भिन्न है। उसकी कला, उसका विधान, भाषा, शैली सब कुछ नये हैं।

आधुनिक अर्थ में कहानी उन्नीसवीं सदी की देन है। एडगर एल०पो० (1809-49) इसके जन्मदाता माने जाते हैं।[3]

निरन्तर परिवर्तन जीवन की प्रवृत्ति है। परिवर्तनशील वस्तु को परिभाषा में बाँधना कठिन है, इसके बावजूद कहानी क्या है? यह बताने के लिए विद्वानों ने समय-समय पर विचार किया है। इस प्रयत्न में कहानी का कोई परिभाषिक स्वरूप निश्चित तो नहीं हो सका फिर भी कहानी के विभिन्न रूपों पर प्रकाश अवश्य पड़ा। कहानी की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ दृष्टव्य हैं:

एडगर एलनपो कहानी की परिभाषा देते हुए कहते हैं "कहानी एक छोटी विवरणात्मक रचना है, जो इतनी छोटी होती है, कि एक बैठक में पढ़ी जा सके। इसे पाठक पर प्रभाव डालने के लिए लिखा जाता है। इसमें ऐसे तत्वों का बहिष्कार कर दिया जाता है, जो उस प्रभाव को अग्रसर करने में योग न दें। वह अपने आप में पूर्ण होती है।"[4]

जेम्स डब्ल्यू लीन के अनुसार "संक्षेप में कहानी नाटकीय रूप में एक चरित्र के जीवन में संक्रमण बिन्दु की अभिव्यक्ति है।"[5] कहानी के वैशिष्टय पर

प्रकाश डालते हुए **बैण्डर मैथ्यू** का कहना है, कि, ''कहानी में एक ही चरित्र अथवा एक ही स्थिति के द्वारा, अनेक भावनाओं का चित्रण रहता है। कहानी को स्वत: पूर्ण होना चाहिए।"[6]

प्रेमचन्द्र के अनुसार "कहानी एक ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है। एक क्षण के चित्र को इतनें माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।"[7]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहानी की विशेषता बताते हुए कहते हैं "आख्यायिका साहित्य का वह रूप है जिसके कथा-प्रवाह और कथोपकथन में अर्थ अपने प्राकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दबाने वाले भाव-विधान या अउक्ति वैचित्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है।"[8]

गुलाबराय लिखतें हैं "छोटी कहानी एक स्वत: पूर्ण रचना है जिसमें एक लक्ष्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्याशित ढंग के उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतुहलपूर्ण वर्णन न हो।"[9]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहानी का स्वरूप निम्नांकित बिन्दुओं से निर्मित ठहरता है।

1. कहानी एक कथात्मक संक्षिप्त गद्य रचना है, यह अपने आपमें पूर्ण होती है। कहानी की रूपरेखा पूर्णत: स्पष्ट और संतुलित होती है। कहानी ऐसी होनी चाहिए जिसे बीस मिनट, एक घण्टा या एक बैठक में पढ़ा जा सके।
2. कहानी में घटनाएँ होती है, जो कौतूहल द्वारा चरम बिन्दु की ओर अग्रसर होती

है। कहानी में कथानक का विस्तार अप्रत्याशित ढंग से होता है। कहानी में कार्य-व्यापार की तीव्रता भी होती है।

3. कहानी की घटनाएँ व्यक्ति केन्द्रित होती है तथा कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है।

4. कहानी में एक ही चित्र द्वारा अनेक भावों का एक चित्रण रहता है।

5. कहानी में पूर्ण मनुष्य नहीं, उनके चरित्र का एक पक्ष चित्रित होता है।

6. कहानी में जीवन के एक अंग, एक मनोभाव का चित्रण रहता है।

7. कहानी सौन्दर्य की एक झलक का रस होती है। कहानी का आवश्यक गुण रस होता है।

8. कहानी में कल्पना का योग होता है। कहानी में नाटकीयता भी होती है।[10]

कहानी का विकास किसी देश-विशेष में नहीं हुआ। अनेक देशों में एक साथ या फिर अलग-अलग युगों में विकास हुआ है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विकास के संदर्भ में अधिकांशत: इंग्लैण्ड को ही महत्ता प्राप्त है। कहानी के सन्दर्भ में भी इंग्लैण्ड का नाम लिया जाता है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं। दरअसल बाकी दुनिया के प्रचार के दरवाजे अंग्रेजों ने बंद कर दिये थे। भारत में दुनिया को इंग्लैण्ड की ही मार्फत जाना गया। विश्व की महान प्रतिभाओं से भारत का सम्पर्क नहीं हो सका। जब बालजाक, ज़ोला, स्ताण्ढाल, फ्लाबेयर, चेखब, तुर्गनेव जैसे दिग्गज अपनी कालजयी महान रचनाओं से विश्व को चमत्कृत कर रहे थे, तब हम जेमन्आयर टैस या डैविड कापरफोल्ड की रचनाओं पर ही इति श्री कर बैठे थे।[11]

हिन्दी कहानी के विकास में अंग्रेजी राज्य की स्थापना का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस संदर्भ में उनके साथ आयी ज्ञान की नयी रोशनी की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता।

हिन्दी कहानी के आरम्भ के निश्चित समय को लेकर थोड़ा बहुत मतभेद है। जैसा कि, पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द्र की हैसियत मील के पत्थर की है, परन्तु कहानी का आरम्भिक रूप छुट-पुट रूप में हिन्दी गद्य के विकास के प्रारम्भिक चरण में ही दिखायी पड़ना आरम्भ हो जाता है। पूर्व प्रेमचन्द्र युग में कहानी साहित्य का जो विकास हुआ उसमें भारतेन्दु से पहले की हिन्दी कहानी, भारतेन्दु युगीन हिन्दी कहानी तथा द्विवेदी युग की कहानी को समाहित किया जा सकता है। संख्या एवं शैली-शिल्प की दृष्टि से इस समय लिखी गई कहानियाँ अधिक नहीं है। वास्तव में कथा-साहित्य के विकास के आरम्भिक दौर में कहानी की तुलना में उपन्यास को अधिक महत्व दिया जा रहा था।

जहाँ तक हिन्दी की पहली कहानी का प्रश्न है, विद्वान इस विषय में एक मत नहीं है।

इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाए या नहीं, यह विवादास्पद विषय है। इसमें कोई संदेह नहीं कि परिवर्तनशील भाविक चेतना इसमें उजागर हुई है, किन्तु विषय-वस्तु के स्तर पर यह परम्परित प्रेमाख्यानों का ही स्मरण दिलाती है। इस कहानी में लेखक को समकालीन दृष्टि से युगीन समस्याओं से जूझते, उनका विवेचन-विश्लेषण करते हुए कहीं नहीं देखा जा सकता। इसलिए इसे समकालीन दृष्टि से वंचित कथा कहना ही अधिक उपयुक्त

प्रतीत होता है।[12] किशोरीलालगोस्वामीकृत 'इन्दुमति' कहानी में अवश्य जन-जागृति का अल्प चित्रण हुआ है। इसके साथ ही इसमें तत्कालीन पुलिस के अत्याचार का परोक्ष रूप से संकेत उपलब्ध होता है, किन्तु पूरे तौर पर यह कहानी एक प्रेम कहानी के रूप में ढल जाती है। कहानी में आदर्शवादी पद्धति पर प्रेम का स्फूर्तिपद रोमानी ढ़ंग से चित्रण इसे समकालीन वास्तविकता का चित्र बनने नहीं देता।[13] शिल्प विधि की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की प्रथम कहानी स्वीकारा गया, परन्तु यह उचित नहीं है। प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए, न कि कथानक, शिल्प विचारधारा या किसी अन्य दृष्टिकोण से।[14]

प्रेमचन्द्र युग का हिन्दी कहानी के इतिहास में विशेष महत्व है। प्रेमचन्द्र का आविर्भाव हिन्दी कहानी-साहित्य की एक अपूर्व घटना थीं उन्होंने सामाजिक मानव की सामान्य और विशिष्ट परिस्थितियों, मनोवृत्तियों और समस्याओं का अंकन कर हिन्दी कहानी को निश्चित यथार्थवादी दिशा और गति प्रदान कीं विषय की दृष्टि से सामाजिक, ऐतिहासिक, रोमांटिक, राजनीतिक, पारिवारिक, साहसिक, रहस्यात्मक और विद्रोहपूर्ण सभी प्रकार की रचनाओं के विकास पथ को प्रकाशित किया। इसमें युगीन जीवन की अनेक समस्याओं जैसे बेकारी, वेश्यावृत्ति, अछूतोद्धार, अंधविश्वास, नशा और निर्धनता आदि को समाहित किया गया। यह युग गांधीवाद के विकास का युग था। प्रेमचन्द्र की कहानियाँ जीवन के लिए किसी मार्मिक प्रसंग को लेकर चलती हैं प्रसंग सच्चा और महत्वपूर्ण होता है।[15] जयशंकर प्रसाद प्रेमचन्द्र के समसामयिक रचनाकार थे। परन्तु कवि और नाटककार पहले, बाद में कहानीकार थे। सांस्कृतिक

चेतना इनकी कहानियों का मुख्य बिन्दु बनी है। इनके समसामयिक कहानिकारो में पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य शास्त्री, विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं चतुरसेन आदि है।

प्रेमचन्दोत्तर युग, हिन्दी कहानी के इतिहास का प्रमुख युग है। राष्ट्रीय आंदोलनों के साथ-साथ द्वितीय विश्वयुद्ध इस काल की सबसे प्रमुख घटना है। प्रेमचन्दोत्तर युग के चर्चित कथाकार जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने के स्थान पर उससे टकराहट अनुभव कीं उन्होंने एक दार्शनिक मनोवैज्ञानिक मुद्रा के साथ व्यक्ति की संक्रांत मन:स्थिति को उजागर करना चाहा।[16] हिन्दी कहानी के तीसरे युग में जैनेन्द्रजी द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण की परम्परा का विकास हुआ। श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्‌घाटन किया है। उनके 'हिलोर, 'पुष्करिणी', 'खाली बोतल' आदि मुख्य कहानी-संग्रह है। श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने भी अपनी कहानियों में मनोविश्लेषण की परम्परा को आगे बढ़ाया है। 'विपथगा, 'परम्परा', 'कोठरी की बात' आदि उनके कहानी-संग्रह है। इसी परम्परा में ईलाचन्द्र जोशी के 'रोमांटिक छाया', 'आहुति', 'दीवाली और होली' कहानी संग्रह आते है।[17]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी कहानियों का आधार सामाजिकता बनाया। 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'गोखरू', 'खिलौने', 'मरुस्थल', 'चट्‌टान' आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर व्यंग्य किया है। 'परायासुख', 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञानदान', 'जबरदस्ती', 'बदनाम' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।[18]

हास्य रस की कहानियों में ओ०पी० श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, बेढ़ब बनारसी, मिर्ज़ा अज़ीम बेग चुगताई और जयनाथ 'नलिन' के नाम मुख्य हैं। जी०पी० श्रीवास्तव की कहानियों में 'पिकनिक', 'भडाम सिंह शर्मा, 'गुदगुदी', 'लतखोरी लाल' मुख्य है। मिर्जाजी की 'गीदड़ का शिकार', लोफ्टिनेन्ट, 'कोलतार' कहानियाँ मुख्य हैं। हिन्दी कहानी-साहित्य में महिला लेखिकाओं ने भी योगदान दिया है। सुभद्राकुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, उषादेवी मिश्र, सत्यवती मलिक, 'कमलादेवी वर्मा, चन्द्रप्रभा, तारा पांडेय, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि नें भी बहुत सी कहानियाँ लिखीं।[19]

सन् 1950 के अनन्तर हिन्दी कहानी क्षेत्र में एक नये आन्दोलन का प्रवर्तन हुआ जिसे 'नई कहानी' आंदोलन कहा गया। इस आन्दोलन के उन्नायकों राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, मोहन राकेश आदि ने घोषित किया कि नई कहानी का लक्ष्य नये भाव बोध या आधुनिकता बोध पर आधारित जीवन के यथार्थ अनुभव का चित्रण करना है। उन्होंने कहानी पर किसी भी प्रकार के बाह्य तत्व विचार, सिद्धांत या उपदेश के आरोपण को अस्वीकार किया। नई कहानी में व्यक्ति निष्ठ अहं, कामचेतना, यौनाचार, नारी-पुरुष संबंधों का चित्रण प्रमुख रूप में हुआ है।[20]

नये कहानीकारों में मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, कृष्णबलदेव वैद, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, श्रीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती आदि के नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

कहानी की भांति उपन्यास भी आधुनिक युग की देन है, यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है, तथापि प्राचीन संस्कृत साहित्य में उस अर्थ में कभी प्रयुक्त

नहीं हुआ, जिस अर्थ में हम आज उसका प्रयोग करने लगे है।

डॉ० मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी शब्द-कोश में 'उपन्यास' के कुछ अर्थ इस प्रकार दिये है:- उल्लेख(Mention), अभिकथन(Statement), सम्मति(Suggestion), उद्धरण(Quatation), संदर्भ(Reference)।[21]

डा० मैकडोनल ने अपने शब्दकोश में उपन्यास के अर्थ इस प्रकार किये हैं:- विज्ञप्ति(Intimation), अभिकथन(Statement), उद्घोषणा(Declaration), वाद-विवाद(Discussion)।[22]

विभिन्न विद्वानों ने उपन्यास की भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी है:- जार्जमूर-के अनुसार "उपन्यास समकालीन इतिहास के अतिरिक्त और कुछ नही है। वह जिस युग में हम जी रहे है। उसके सामाजिक परिवेश का बिल्कुल पूर्ण और सही-सही पुनर्निर्माण है।"[23]

प्रेमचन्द ने उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र मात्र' कहकर उपन्यास के बदल जानें वाले दृष्टि केन्द्र को व्यक्त किया।[24]

Edward Wagenknecht 'Cavalcade of the English Novel,

Introduction "The only quite accurate defination of the Novel is the history of the novel."[25]

अत: हम कह सकते है कि उपन्यास का माध्यम गद्य है, उपन्यास बड़े आकार का होता है तथा इसमें कल्पित कथा होती है। उपन्यास का दृष्टिकोण यथार्थोन्मुखी होता है। यह उसे रोमांस से पृथक कर देता है। इसमें पात्रों का चरित्रांकन अनिवार्य होता है, वर्णन भी अनिवार्य होता है। उपन्यास में किसी न किसी प्रकार की

रोचकता भी अनिवार्य है, क्योंकि बिना रोचकता के सब कुछ व्यर्थ हो सकता है।[26] हिन्दी उपन्यासों के विकासक्रम को तीन काल खण्डों में विभाजित करके देखा जा सकता है।

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास(1877 से 1918 ई०)।
2. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास(1918 से 1936 ई०)
3. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास(1936 से)।

प्रेमचन्द्र युग में श्रद्धाराम फुल्लौरी ने सन् 1877 में 'भाग्यवती' नामक उपन्यास लिखा जिसकी काफी प्रशंसा हुई थीं प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यासों को पुनः विभाजित किया जा सकता है।

क. सामाजिक उपन्यास।

ख. ऐतिहासिक उपन्यास।

ग. घटनात्मक उपन्यास: तिलिस्मी, ऐयारी उपन्यास।

इस युग के सामाजिक उपन्यासकारो में किशोरीलाल गोस्वामी, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, जगमोहन सिंह, लज्जाराम शर्मा, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, मन्नन द्विवेदी आदि प्रमुख हैं।[27] 'भाग्यवती', 'एक अजान सौ सुजान', बालकृष्ण भट्ट, 'धूर्त रसिकलाल', लज्जाराम शर्मा, 'श्यामास्वप्न' जगमोहन सिंह, 'निस्सहाय हिन्दू' राधाकृष्ण दास कृत प्रमुख सामाजिक उपन्यास है।[28]

किशोरीलालगोस्वामीकृत 'तारा व क्षात्र कुल कमलिनी, 'सुल्ताना रजिया बेगम व रंगमहल में हलाहल', 'आदर्श रगणी', गंगाप्रसादगुप्तकृत 'नूरजहाँ', 'वीरपत्नी',

'हम्मीर', जयरामगुप्ताकृत 'काश्मीर पतन', 'रंग में भंग', 'मायारानी', 'कलावती', 'मल्का चाँद बीबी' आदि प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है।[29]

हिन्दी में तिलिस्मी-ऐयारी उपन्यासों के प्रवर्तक देवकीनन्दन खत्री माने जाते है। 'चन्द्रकांता' खत्रीजी की अपूर्व रचना है। खत्रीजी ने- 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर', 'कुसुमकुमारी', 'काजर की कोठरी', 'गुप्त गोदना' आदि उपन्यास लिखे है।[30]

प्रेमचन्द पूर्व युग में जासूसी उपन्यास भी लिखे गये। गोपाल राम गहमरी ने लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे। जिनमें 'अद्‌भुत लाश', 'गुप्तचर', 'बेकसूर को फाँसी', 'सरकती लाश', 'खूनी कौन', 'बेगुनाह का खून', 'डबल जासूस', 'भयंकर चोरी', 'जासूस की भूल', 'अद्‌भुत खून', 'खूनी का भेद', 'लाइन पर लाश', 'गुप्त भेद', 'खूनी की खोज' आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त रामलाल वर्मा ने 'चालाक चोर', 'जासूस के घर खून', 'जासूसी कुत्ता', 'अस्सी हजार की चोरी' आदि जासूसी उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'जिन्दे की लाश', जयराम गुप्ता का 'लंगड़ा खूनी', 'काला नाँद', रामप्रसाद लाल का 'हम्माम का मुर्दा' आदि जासूसी उपन्यास है।[31]

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास में नया युग प्रारम्भ होता है, बल्कि यह कहा जा सकता है, कि वास्तविक अर्थो में उपन्यास-युग आरम्भ होता है। प्रेमचन्द इस युग के मूर्धन्य उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द ने 'गोदान', 'गबन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मल', 'प्रेमाश्रम', 'प्रतिज्ञा' आदि प्रमुख उपन्यास लिखे। गोदान में होरी के माध्यम से किसान की समस्त चिन्ताओं और समस्याओं को मुखरता प्रदान की गई है।

ग्रामीण समस्याओं का चित्रण 'प्रेमाश्रम' में देखने को मिलता है। उन्मुक्त प्रेम की समस्या को 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में दिखाया गया है।

'गोदान' विश्व-साहित्य की अमर कृतियों में स्थान पाकर भारत का सौभाग्य-सूर्य माना जाने लगा। इन उपन्यासों में राजाओं से लेकर सड़क पर भीख मांगने वाले भिखारी तक, महलो से लेकर झोपड़ी तक, कुलवधुओं से लेकर वेश्याओं तक, कलकत्ता से लेकर छोटे-छोटे गांवों तक ब्राह्मणों से लेकर मेहतरों तक सभी समस्याओं को अभिव्यक्ति मिलीं इस युग में आकर हिन्दी उपन्यास को नवीन आधार मिला।[32]

आत्मप्रवंचना का यह युग मानव-मूल्यों के निर्मम विघटन और जीवन-व्यापी कटुता-कुण को लिए, अपनी सम्पूर्ण प्रकृति-विकृति के साथ हिन्दी उपन्यास में प्रतिबिम्बित तो हुआ ही, उसे नया रंग, रूप और आकार भी देता रहा। सामाजिक उपन्यासों में भगतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दांव', 'रेखा', 'भूले बिसरे चित्र' आदि मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क का 'गिरती दीवारें', 'गर्मराख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', पत्थर-अल-पत्थर', आदि है।[33]

अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुन्द्र', 'सुहाग के नूपुर' मुख्य सामाजिक उपन्यास है। यशपाल का 'झूठा सच' महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसके दो भाग हैं- 'वतन और देश', 'देश का भविष्य'। नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुखमंचन', 'बलचनमा', रतिनाथ की चाची प्रमुख उपन्यास है। जैनेन्द्र के 'त्याग पत्र', 'कल्याणी', 'जयवर्धन'। ईलाचन्द्र जोशी के 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी', 'ऋतुचक्र' आदि। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी', 'नदी

के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' आदि प्रमुख समाजवादी उपन्यास है।[34] ऐतिहासिक उपन्यासों में वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ़कुण्डार', 'विराट की पादमनी', झाँसी की रानी', मृगनयनी' आदि है। चतुरसेन शास्त्री के 'वैशाली की नगरवधू', 'सोमनाथ', 'आलमगीर' प्रमुख है। अमृतलाल नागर के 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'कादम्बरी' व 'हर्षचरितम्' प्रमुख उपन्यास है।[35]

'समकालीन' शब्द 'कालीन' विशेषण में सम उपसर्ग जोड़ने से बना है। कालीन का अर्थ है 'काल में' या 'समय में'। 'सम' उपसर्ग का प्रयोग प्राय: 'एक ही' या 'एक साथ' के अर्थ में होता है। अत: 'समकालीन' शब्द समय की धारणा से सम्बद्ध एक विशेषण है, जो सामान्यता एक ही समय में रहने या होने वाले घटनाक्रमों (रचना के संबंध में) का रचनाकारों का बोध कराता है। 'नालंदा अद्यतन कोश' के अनुसार 'समकालीन' शब्द 'सम' उपसर्ग को 'कालीन' (काल की अवधारणा से जुड़े हुए विशेषण) में लगाकर बनता है। जिसका अर्थ है:- 'जो एक ही समय में हुआ हो। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' में, 'समकालीन' को 'एकाच कालचे' अर्थात एक कालीन कहा गया है।[36] 'मानक हिन्दी कोश' में इस शब्द के अनेक अर्थ दिए गए हैं।

(क) जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहें हो। एक ही समय में रहने वाले जैसे-महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे।

(ख) जो उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हों।[37]

'आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश' में समकालीन का अर्थ एककालिक, एककालीन तथा समकालीन बताया गया है। 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' के अनुसार 'समकालीन' का अर्थ है जो दो या कई एक ही समय में हों। इसी प्रकार 'वृहत हिन्दी कोश' में इस शब्द का अर्थ 'एक समय में रहने वाले' किया गया है।[38]

हिन्दी में 'समकालीन' शब्द के लिए अंग्रेजी के 'काण्टेम्पोरेरी' शब्द का प्रयोग उचित है, क्योंकि 'काण्टेम्पोरेरी' का अर्थ यदि एक ही समय में रहने या होने से है तो 'समकालीन' शब्द में भी एक ही समय में रहने या होने वाले अर्थ की गूँज है।[39]

स्वरूपत: समकालीन, काल साक्षेप है। इसलिए समकालीन को काल की सीमाओं में रहते हुए ही परिभाषित किया जा सकता है। अत: ऐतिहासिक दृष्टि से मानव मूल्य और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन ला देने वाली घटनाओं से संबद्ध कालावधि विशेष के अन्तर्गत घटित घटनाओं को और उसी अवधि की सीमा में आने वाली अन्य घटनाओं को समकालीन कहा जाता है।

साधारणतया समकालीन कहानी का आरम्भ सन् 1960 से ही किया जाता है। समकालीन मानसिकता को उस मोहभंग से सम्बद्ध कर दिया जाता है, जो भारत पर चीन के आक्रमण के बाद उपजा था। किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर प्रतीत होता है कि मोहभंग की यह अवस्था एक लम्बे समय में घटित होने वाली विभिन्न धारणाओं के परिणाम स्वरूप पैदा हुई थी जिसकी प्रक्रिया स्वाधीनता के तुरन्त बाद प्रारम्भ हो गई थीं अतएव समकालीन कहानी का प्रारम्भ नयी कहानी से स्वीकार करना होगा।[40]

स्वाधीनता प्राप्ति की घटना ने भारतीय जनमानस को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। स्वाधीनता प्राप्ति से नई आशंकाएँ और आकांक्षाऐं तो पैदा हुई, किन्तु इसके साथ जुड़े देश-विभाजन, भयानक रक्तपात, लाखो लोगों का स्थानान्तरण, महात्मा गांधी की हत्या जैसी घटनाओं ने दुखद कुंठा को भी जन्म दिया। देश के परिदृष्य में भी गहरा और व्यापक बदलाव आया। देश में ऐसे अजनबी आ बसे जिनके धर्म के यहाँ के मूल निवासियों का कुछ भी सांझा नहीं था।, जिनके खान-पान रीति-रिवाज, रहन-सहन और मूल्यों से यहाँ के मूल्यों में पर्याप्त अन्तर था। परिणामस्वरूप परायेपन का अहसास होता था। उनके प्रति अपनेपन की बजाय तिरस्कार व अवज्ञा का भाव ही मुखर होता था। इस कारण सारे उत्तरी-भारत की मानसिकता तनावग्रस्त हो गई। इसी आशा और कुंठा, नए आवेग और पुराने तनावों और सतत् संकट के बोध के वातावरण में समकालीन कहानी का आरम्भ हुआ।[41]

आज़ादी के बाद जनसंख्या बढ़ रही थी, फलस्वरूप बढ़ती हुई बेरोजगारी, नौकरशाही की लापरवाही, नेताओं के भ्रष्टाचार, मंहगाई और समाज में व्याप्त अनैतिकता आदि के प्रभाव ने समाज के मन में निराशा और गहरी व्यथा भर दीं इस प्रकार अनैतिक संवेदना-शून्य जड़ व्यवस्था के सामने लाचार तथा परम्परागत आस्थाओं, मूल्यों और विश्वासों से वंचित रचनाकार की दृष्टि में गहरा बदलाव आना स्वाभाविक था। यही बदलाव समकालीन रचना की दृष्टि और समकालीन साहित्य का प्रेरक बना।[42] कहानी की विकास-यात्रा में स्वतंत्रता के पश्चात् नई कहानी नाम बहुत चर्चा का विषय रहा। कहानी साहित्य के केन्द्र बिन्दु में आ गई और महत्वपूर्ण बन गई। सन् 1950 से जन्म लेकर नई कहानी 62 तक चलती रही या यह भी कह सकते

है कि कुछ विचारधाराऐं और कहानीकारों के बदल जाने पर वह आज भी जीवित है। वैसे ही जैसे कि सन् 1960 के बाद की कहानी के लिए समीक्षकों ने अकहानी, सचेतन कहानी, समानान्तर कहानी, समकालीन कहानी आदि कई नाम दिए, इनको लेकर काफी विवाद भी हुए।[43]

'अकहानी' के विषय में गंगा प्रसाद विमल का विचार दृष्टव्य हैं, वस्तुत: अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा इसी तरह के मूल्य-स्थापन का अस्वीकार है। इस आधार पर वे कहानियाँ जो स्वीकृत मानों, धारणाओं और आरोपित प्रपतियों के स्वीकार से अलग है, हमारे विवेचन के अन्तर्गत आ सकती है। या फिर उनके विश्लेषण की यही संगति हमें उपयुक्त जान पड़ती है।[44] ''इसी तरह सचेतन कहानी के विषय में बतलाते हुए महीप सिंह कहते हैं कि'', ''सचेतना एक दृष्टि है, वह दृष्टि जिसमें जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्राति काल में चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे, चाहे उसे घूँट-घूँट पीकर हमें तृप्ति हो, चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आँख मूँदकर निगलना पड़े, परन्तु जीवन से हमारी सम्पृक्ति छूटती नहीं। कड़वे घूँटों से घबराकर जीवन से मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गई है और हर बार किसी न किसी प्रकार का दार्शनिक, बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रवृत्ति जीवन से भागने की नहीं रही है। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है।[45]

हम जिसे समकालीन कहते है प्राय: अल्प समय यानी कि दस या पाँच वर्ष ही उसकी परिधि में आता है, तो क्या हम दस-पाँच वर्षो की कहानी को ही

समकालीन कहानी की संज्ञा दें या इसकी उचित समय-सीमा क्या हो सकती है, यह प्रश्न विचारणीय है। दूसरा यह भी जानना आवश्यक है कि, समकालीन कहानी पूर्ववर्ती कहानी से किस रूप में अपनी अलग पहचान बनाती है।[46] साहित्य की सभी विधाओं के साथ 'समकालीन कविता' एवं 'समकालीन कहानी' की अवधारणा में जितना भ्रम रहा है, कदाचित किसी अन्य आधुनिक साहित्यिक विधा के संबंध में नहीं दिखायी देता।[47]

समकालीन साहित्यकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से समकालीनता को व्याख्यायित किया है। 'समकालीनता' का अर्थ कहीं प्रवृत्ति मूलक है तो कहीं समय बोधक। विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोध प्रबन्ध अपने-अपने ढ़ंग से 'समकालीन' को स्पष्ट कर रहें है। आधुनिकता के विषय में तो एक सार्वजनीन धारणा बन गई है किन्तु 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में अब भी किया जा रहा ह। इस तथ्य पर पहले ही विचार किया जा चुका है कि, 'समकालीनता' और 'समसामयिकता' मूल अर्थ में अंग्रेजी के 'कंटोपोरेनिटी' शब्द का समतावाची है, जिसका अर्थ है उसी कालखण्ड या उसी समय में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति। किन्तु आज के साहित्यिक लेखकों ने इसके मूल अर्थ को कम ही ग्रहण किया है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह समसामयिकता को उसके मूल अर्थ में ग्रहण करते हुए आधुनिकता से अलग मानते हैं, कि 'समसामयिकता' कलेवर की चीज होती है।[48]

आधुनिकता समसामयिक बिखराब और कलेवरगत उथल-पुथल के भीतर निरंतर प्रवाहित गतिशील चेतना को समझने का दृष्टिकोण है।····· इसलिए समसामयिक

को आधुनिक मानना जोखिम है। डा० नगेन्द्र समसामयिक को सीमित संकुचित अर्थ में ही आधुनिकता के समकक्ष मानते हैं। वे कहते हैं, "आज के सीमित संदर्भ में आधुनिक का एक संकुचित अर्थ 'समसामयिक' भी उभरकर सामने आया है। इस संदर्भ में आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान का युग बोध, यहाँ दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित रहती है।[49] डा० रमेश कुन्तल मेघ भी 'समसामयिकता' में सामयिक बोध की स्थिति स्वीकारतें है, 'समसामयिकता पूरे युग का एक आत्यंतिक सामाजिक-ऐतिहासिक बोध नहीं है। प्रत्येक युग में कई समसामयिकताएं हो सकती है।[50] श्रीपत राय भी 'समसामयिक' और 'आधुनिक' को अलग-अलग अर्थो में स्वीकारते है समयायिक और आधुनिक में जो अंतर है वह केवल समय का ही नहीं, अन्तर्दृष्टि का भी है। कदाचित् रचना विधान का भी है।[51]

डॉ० विश्वंभरनाथ उपाध्याय 'समकाल' और 'समकालीनता' का अर्थ विस्तार करते हुए कहते है, "समकाल' शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खण्ड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो कहेंगे कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित चित्रित करके ही हम 'समकालीनता' की अवधारणा को समझ सकते है।[52]

डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव ने 'समसामयिकता' और 'समकालीनता' को दो स्वतंत्र भावों को व्यक्त करने वाला शब्द मानकर 'समसामयिकता' को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'समसामयिकता' इतिहास-बोध की प्रक्रिया है, जो निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। अत: समसामयिकता का प्रयोग जब हम साहित्य में करते है तो उनका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि हम विगत एवं आगत दोनों से वर्तमान को

जोड़ते हैं।[53]

विभिन्न कोषों के साक्ष्य के बावजूद एक विशिष्ट कालखण्ड में रचनाशील या समान वय वाले सभी रचनाकारों को समकालीन कहना भ्रामक होगा। इस अर्थ में किये जा रहे प्रयोगों पर व्यंग्य करते हुए निर्मल वर्मा ने कहा है, ''कि आज समकालीन शब्द काफी विकृत हो चुका है, इसका प्रयोग उन लेखकों के लिए हो रहा है जो जीवित हैं और लिख रहे है।''[54] डा० यश गुलाटी समकालीनता को मुख्यत: समसामयिक बोध से जोड़ते है। ''उनके अनुसार समकालीनता की वास्तविक कसौटी बोध, प्रवृत्ति अथवा रचना शिल्प की समान धर्मिता है।''[55] जगदीश श्रीवास्तव उसे स्थिति-विशेष का आयाम ठहराते है, उनके शब्दों में ''समकालीनता' एक व्यापक स्थिति विशेष का आयाम है, जो हमें देशकाल का बोध देता है''[56] इसके अलावा समकालीनता देशकाल के बोध के साथ-साथ सक्रियता की भी पुष्टि करती है। अत: स्पष्ट है कि समकालीन रचनाकार स्वयं को युगीन वस्तु-स्थिति की स्वीकृति तक ही सीमित नहीं करता, बल्कि वह उसके परिवर्तन के लिए भी सक्रिय होता है। इस संदर्भ में डॉ० नरेन्द्र मोहन ने उचित ही कहा है कि, ''समकालीनता एक ठहरी हुई गतिहीन और जड़ स्थिति नहीं है, बल्कि ठहराव, गतिहीनता और जड़ता को सख़्ती और निर्ममता से तोड़ने वाली यह गतिमान ऐतिहासिक प्रक्रिया और चेतना है।[57]

अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करते हुए समकालीन रचनाकार का इस निष्कर्ष पर पहुँच जाना असंभावित नहीं कि मनुष्य के संकट और दुख मात्र बाहरी कारणों से नहीं उपजते, भीतरी कारणों से भी पैदा होते हैं। राजनीतिक और समाजार्थिक व्यवस्था हमारी चेतना को इतना अभिभूत कर चुकी

है, कि हमारा प्रतिरोधात्मक रवैया नि:शेष हो चुका है। इसलिए स्थितियों और उनकी उत्तरदायी शक्तियों की वास्तविकता का बोध समकालीन बोध की आवश्यक शर्त है।[58]

समकालीन रचनाकार अपने युग की वास्तविकता को यथावत स्वीकार नहीं कर लेता। वह आलोचनात्मक दृष्टि से इसकी जांच-पड़ताल के साथ ही, जैसाकि स्टीफन स्पैडर मानते है उसके प्रति कई बार क्रांतिकारी रवैया भी अपनाता है। समकालीन रचनाकार का बोध एकांगी और इकहरा नहीं होता। अपनी स्वचेतना और संवेदनाशीलता के बल पर वह काल की सीमाओं पर अतिक्रमण करता है।[59]

समकालीनता में द्वन्द्वात्मकता भी अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। समकालीनता वास्तव में कोई प्रवाह नहीं है, बिना द्वन्द्वात्मकता के उसका स्वरूप कुछ भी नहीं है। यह द्वन्द्वात्मक स्थिति ही उसे अविराम रूप से कालचक्र से सम्बद्ध रखती है। एक ओर तिल-तिल क्षरित होना और दूसरी ओर तिल-तिल जुड़ते रहना यह द्वन्द्वात्मक स्थिति ही है जो समकालीनता की प्राण चेतना से जुड़ी हुई है और जिसके बिना समकालीनता मात्र एक समसामयिक काल प्रवाह बन जाती है।[60]

'समकालीनता' के भाव बोध के आविर्भाव के पीछे कुछ प्रमुख बिन्दु रहे हैं। यह भाव-बोध धीरे-धीरे विकसति हुआ है। ये प्रमुख बिन्दु इस काल-विशेष की देन थे, जिसमें धर्म, संस्कृति, अर्थतन्त्र का विकृत रूप या आर्थिक असंतुलन, भ्रष्ट व्यवस्था, सत्ता की असफलता और असामाजिक तत्व आदि कुछ ऐसे तीखे अनुभव थे जिसनें समकालीन बोध को जन्म दिया।[61]

अत: कहा जा सकता है कि समकालीनता हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय होने की तत्परता देती है। यह तत्परता जीवन के गहनतम अन्तरालों में व्याप्त

समस्याओं से जोड़ती है, साथ ही जीवन की बाह्य और ऊपरी समस्याओं और प्रश्नों से भी सम्बन्ध स्थापित करती है।[62] समकालीन कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अधिकतर कहानीकारों ने व्यवस्था विरोध का सफल चित्रण किया है। मणिमधुकर हो या विश्वेश्वर और प्रभात मित्तल हो या स्वदेश दीपक, ईश्वर चन्दर हो या ध्रुव जायसवाल सभी ने व्यवस्था से कहानी को पकड़ा है और उसके माध्यम से आदमी के अन्दर की यात्रा की है। प्रभात मित्तलकृत 'मायाजाल', निरुपमासोवतीकृत 'दंशित', सत्येनकुमारकृत 'आयाम, दीप्ति खण्डेलवालकृत 'जहर', मणिमधुकरकृत 'चुपचाप दुख', सुदर्शन नारंगकृत 'हमशक्ल' आदि ऐसी ही कहानियाँ है, जहाँ व्यक्ति बाह्य परिवेश से जुड़कर अपने अन्दर की यात्रा करता है।[63]

समकालीन कहानी ने जीवन की यातना को, यातना के कारणों को उकेरा है। जीवन के संकट को, संकट के जीवन को देखा है, पहचाना है। दूसरे शब्दों में कहें तो यथार्थ को, यथार्थ जीवन की कहानी के प्रमुख कथन के रूप में पहचाना है। 'यथार्थ का संकट' और 'संकट का यथार्थ' कहानी की पहचान को बनाता है। व्यक्ति का अहं भी सामाजिक यथार्थ को अपने सम्मुख नगण्य समझता है, क्योंकि क्रूर समाज व्यक्ति के यथार्थ को दबोचना चाहता है।[64]

समकालीन कहानी ने 'यथार्थ का आतंक' और 'आतंक के यथार्थ' को भी महसूस किया है। शोषित एवं दलित वर्ग को भी जागरण की हवा ने महत्वाकांक्षी बना दिया है। वे आरक्षण द्वारा महत्वकांक्षाओं की पूर्ति को ही उचित समझते हैं और वे अधिकारों के लिए संघर्ष भी करते है। यह संघर्ष आतंक पैदा करता है और यह आतंक एक यथार्थ है।[65]

समकालीनता में 'यथार्थ' का बोध प्रमुख रहता है। समकालीनता को एक मानसिकता भी कहा जा सकता है। जो नये जीवन-संदर्भों को उसके नये आयामों में जीवंत रूप में प्रस्तुत करती है। प्रस्तुति यथार्थ के धरातल पर होती है। ये जीवन-संदर्भ जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। एक नई दृष्टि, एक नई राह और नई धारणाएँ मिलती और बनती है, जो जीवन का मार्ग-दर्शन करने में सक्षम होती है। कोरी भावुकता अथवा आदर्श का सन्निवेश नहीं होता है।[66]

समकालीनता समय-साक्षेप होते हुए भी व्यापक परिवेश से जुड़ी है। आज से वर्षों पहले लिखी गई कहानी उस समय समकालीन थीं आज लिखी जाने वाली कहानी भी समकालीन है। हर युग का अपना समकालीन होता है और समकालीन का अपना पूरा युग।[67]

समकालीनता ही साहित्य जगत में वह बिन्दु है, जहाँ से साहित्यिक रचना अग्रसर होती है, क्योंकि समकालीनता में परम्परा है, संस्कृति है, वह केवल 'आज' नहीं है 'आज' बीते 'कल' से ही निर्मित होता है। 'आज' और 'कल' का जोड़ ही समकालीनता है।[68]

समकालीनता की आत्मा अतीत और भविष्य दोनों से जुड़कर बनती है। इस कथन की संपुष्टि में कहा जा सकता है कि 'समकालीनता की आत्मा को उन अंतरालों से झाँकने की जरूरत है, जिनसे होकर या तो वह व्यतीत का अंग बन जाती है या फिर भविष्य की संभावना। समकालीनता शब्द आधुनिकता का लघु रूप है तथा एक विशिष्ट समय से सम्बद्ध है, लेकिन समकालीन कहानी में समय और उम्र का इतना महत्व नहीं है जितना समान दृष्टि का। समकालीनता के संबंध में राजेन्द्र यादव

'इम्पोस्टर से सावधान', कहते है। दूसरे शब्दों में समकालीनता व्यक्ति के उस नकाब को उतार फेंकती है जो उसने ओढ़ा हुआ है और 'मानव' होने का भ्रम पैदा करा रहा है, जबकि वह मानवीयता, संस्कृति और दायित्व जैसे शब्दों के अर्थो से कोसों दूर है।[69]

समकालीन में परिस्थितियों को देखने का विशेष कोण होता है, इस सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह का कथन हैं कि "समकालीनता का अर्थ है परिवर्तनों और परिस्थितियों को सही कोण से देखने का आगह।"[70]

समकालीनता किसी 'सौन्दर्यशास्त्र' में बंधी-बंधायी लीक को न मानकर स्वच्छंदता को स्वीकार करती है। इतिहास बोध समकालीनता में एक कालखण्ड विशेष से जुड़ा होता है। समकालीनता में अपने 'काल' में घटित विशिष्ट और प्रभावशाली घटनाओं से निर्मित मानसिकता होती है। समकालीनता प्रौद्योगिकरण अर्थव्यवस्था और महानगरीय जीवन की विसंगति, असंगति, त्रास, संत्रास आदि में नीहित यथार्थ के अनेक रूपों और बहुविध आयामों का प्रत्यक्षीकरण है।[71]

समकालीनता ने शोषक वर्ग यानी आमजन की उस मानसिकता को गहराई से टटोला है, जो पूँजीवाद की देन है, जिससे आम व्यक्ति पीड़ित है। शोषित वर्ग के आक्रोश की चिंगारी को समकालीनता विस्फोटक बना देती है। समाज, राजनीति और व्यक्ति के स्वच्छ स्वस्थ रूप को प्रतिष्ठित करना उसका लक्ष्य है।[72]

इस प्रकार समकालीनता के संबंध में यह कहा जा सकता है कि, उसकी आंतरिक चेतना जीवन-यथार्थ के अनेक नये-नये आयामों के अंतराल में धंसकर, उसके मूलवर्ती संकेन्द्रित कारकों को पकड़ती है और उनका विश्लेषण ऐतिहासिक बोध की

पृष्ठभूमि में रखते हुए वर्तमान से गुजरती है, भावी क्षितिजों को छूने का प्रयास करती है।[73]

समकालीन कथाकारों में अमरकांत, कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, काशीनाथ सिंह, गिरिराज किशोर, महीप सिंह, रवीन्द्र कालिया, दुष्यन्त कुमार, कामतानाथ, मणि मधुकर, गिरधर गोपाल आदि के नाम उल्लेखनीय है। समकालीन प्रमुख पुरुष कथाकारों की सर्जना भूमिका प्रस्तुत है।

निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के भीतरी तनावों का चित्रण हमें अमरकांत के कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। इनके साहित्य में अतीत का मोह नहीं है, न ही भविष्य की आशा है, बल्कि वर्तमान जटिलता के प्रति एक समझदार सवाल है। मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति इन्होंने जो आलोचनात्मक रुख अपनाया है वह इनकी कहानियों को सार्थक एवं समर्थ बनाता है।[74] इनके साहित्य में अपनी स्थिति से बढ़कर महत्वकांक्षा रखने वाले युवक है। किस तरह मौजूदा समाज-व्यवस्था हमारे मानवीय मूल्यों का शोषण करती है, इसका चित्रण इनकी कहानियो में खुलकर किया गया है। अपने परिवेश की विसंगतियों को अमरकांत पैनी दृष्टि से देखते हैं, उनकी कहानी को सामाजिक चेतना के कारण ही वह अपनी पीढ़ी के अन्य लेखकों से अलग है।[75]

अमरकांत प्रगतिशील कहानीकार है। इस दशक के सभी कहानीकारों में वे एकमात्र ऐसे कहानीकार है जो प्रेमचन्द्र के लिए अधिक निकट है। उनमें वही मानवीय संवेदनाशीलता है। जीवन का यथार्थ है और आस्था एवं संकल्प है। समकालीन निम्न-मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति आलोचनात्मक रख ही अमरकान्त की कहानियों को समर्थ और सार्थक बनाता है। अमरकांत की कहानियों का रचना संसार

काफी विस्तृत और व्यापक है। अमरकांत की कहानियाँ बहुत खूबसूरती के साथ इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि मौजूदा समाज-व्यवस्था मानवीय मूल्यों को ध्वस्त ही नहीं करती उनमें विपयर्य भी पैदा करती हैं। उनकी कहानियों के इस संसार में अपने देश और उसके लोगों का चेहरा पहचानना मुश्किल नहीं होता है, क्योंकि मूल्यों के इस चौतरफा संघर्ष में सब नहीं, वे हारते हैं उन्हें जीतना चाहिए और जीत उनकी होती है जो अपने गुणों और क्षमताओं के बल पर नहीं बल्कि किन्हीं दूसरे कारणों से उसे हासिल करते है। 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी', 'जिन्दगी और जोंक', 'केले', 'पैसे और मूँगफली', 'गले की जंजीर', 'नौकर', 'लौट', 'लड़की और आदर्श' आदि कहानियों का मूलाधार मध्यवर्ग है, जिनमें घुन लग चुका है और लोग प्रत्येक स्थिति में जीवन जीने का बहाना कर रहे है।[76] 'लड़की की शादी' कहानी में नेता तुल्य व्यक्तियों के सामर्थ्य और स्रोतो पर प्रकाश डाला है। जिससे देश का वर्तमान इतिहास बन बिगड़ रहा है। 'गगन बिहारी' स्वप्न जीवी युवकों की कहानी है।[77] अमरकांत ने कई उपन्यास भी लिखे हैं। 'सूखापत्ता' (1959ई०), 'आकाशपक्षी' (1967ई०), 'काले उजले दिन (1969ई०), 'ग्राम सेविका', 'बीच की दीवार' (1981ई०), 'सुखजीवी' (1982ई०), 'सुन्नर पाण्डे की पतोहू' 'खुदीराम' आदि उपन्यास लिखें है। 'सूखा पत्ता' कृष्ण नामक एक लड़के की प्रेम कथा है। कृष्ण अपनी प्रेमिका उर्मिला को जी जान से चाहता है। उससे बिछुड़ने पर उसकी स्थिति सूखे पत्ते की जैसी ही हो जाती है किन्तु यही प्रेम उसमें संघर्ष की चेतना उत्पन्न करता है और वह समाज को बदलने के लिए संकल्प होता है। 'आकाश पक्षी' में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज के अन्तर्विरोध की ओर संकेत किया गया है। भारत को राजनीतिक

स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी है, किन्तु आज की समाज में सामंतवादी संस्कृति बद्धमूल हैं, जो प्रगतिशील शक्तियों को आगे बढ़ने में बाधा उत्पन्न करते है। 'काले उजले दिन' में विमाता के व्यवहार से विघटित व्यक्तित्व वाला युवक अपनी समर्पणशीला पत्नी कान्ति के प्यार से परितृप्त न होकर अपने दफ़्तर में काम करने वाली युवती से प्यार करता है। कान्ति घुट-घुट कर मर जाती है। अंत में युवक का विवाह कान्ति की छोटी बहन नीलम से करा दिया जाता है। यह उपन्यास एक रोचक प्रेम कहानी बन कर रह गया है। 'बीच की दीवार' में दीप्ति निम्न मध्यवर्गीय मुंशी मुन्नालाल की लाडली बेटी है। प्यार के कारण तुनुकमिजाज नखरीली, भावुक, घमंडी और काहिल हो गयी है। उसे अपने रूप पर भी गर्व है। वह पहले अशोक की ओर आकृष्ट होती है। किन्तु वह उसे महत्व नहीं देता है। बाद में वह लम्पट मनफूल की ओर बढ़ती है किन्तु उसकी पत्नी लीला बीच में आ जाती है। अन्त में वह मोहन के सम्पर्क में आती है। और बीच की दीवारें-जातिगत बंधनों को तोड़कर दोनों प्रेम-विवाह कर लेते है। अमरकांत को कहानियो में जो ख्याति अर्जित हुई है उसके अनुकूल उपन्यासों की रचना में नहीं।[78]

कमलेश्वर ने आज की भयावह परिस्थितियों में भी समांतर कहानी आन्दोलन के माध्यम से आम आदमी के संघर्ष को वाणी देने का प्रयत्न किया है। ये कस्बाई मनोवृत्ति के कथाकार भी कहे जाते है, परन्तु धीरे-धीरे इनकी यह मनोवृत्ति पूर्णत: बदल गई। इनके साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति देखनें को मिलती है। कहानियों में विराटता और विशदता है। 'जिन्दा मुर्दे' कहानी में वर्ग की कुंठाओं, वर्जनाओं, आर्थिक विषमताओं का चित्रण व्यंग्य शैली के माध्यम से बड़ी संवेदनशीलता

के साथ हुआ है। आधुनिक जीवन के खोखलेपन और कृत्रिमता का पर्दाफाश कर इन्होंने उसे यथार्थ रूप देने का प्रयत्न किया है।[79] कमलेश्वर की कहानियों में विशदता और विराटता का बोध विविध पक्षों का संस्पर्श और यथार्थ की सही अभिव्यक्ति है। 'राजा निरबंसिया' में लेखक ने अपने परिवेश और वातावरण में आधुनिक मूल्यों की खोज की है। उसमें जीवन की 'ट्रेजडी' उभर कर आयी है। 'पानी की तस्वीर', 'उड़ती हुई धुल', 'नीलीझील', 'देवा का मां', 'कस्बे का आदमी', 'खोयी हुई दिशायें', 'दिल्ली में एक मौत', 'जार्ज पंचम की नाक', 'एक रूकी हुयी जिन्दगी', 'तलाश', 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'मांस का दरिया' आदि इनकी प्रमुख कहानियाँ है। 'कस्बे का आदमी' में आज के समाज का यर्था अपनी समग्रता के साथ पूर्ण संवेदना को लिये हुए प्रस्तुत हुआ है। इसमें आज की शिक्षा पद्धति पर व्यंग्य भी है और प्रेम करने की विवशता का अंकन भी है। परायेपन और निरर्थकता का अहसास करानें में भी यह कहानी सफल है। शहरी जीवन के परायेपन की अभिव्यक्ति प्रभावात्मकता के साथ 'दिल्ली में एक मौत' में हुई है।[80]

कमलेश्वर के सभी उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियां (1961ई०),' 'डाक बंगला' (1962ई०), 'लौटे हुए मुसाफिर' (1963ई०), 'तीसरा आदमी', 'काली आंधी' (1974ई०), 'आगामी अतीत', 'वहीबात' (1980ई०), 'सुबह दोपहर शाम' (1982ई०), 'रेगिस्तान' (1988ई०), छोटे-छोटे हैं। कमलेश्वर पुराने नैतिक आदर्शों और आधुनिक व्यवहारिक मूल्यों की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव का यथार्थ चित्र अंकित करने में पटु है। 'एक सड़क सत्तावन गलियां' में उन्होंने आधुनिक परिवेश में कस्बे की जिन्दगी की अच्छी-बुरी स्थितियों का चित्रण किया है। 'डाक बंगला'

में मातृहीना 'इरा का 'विमल' के प्रति आकृष्ट होकर पिता से अलग होने और उसके बाद जीवन-प्रवाह में अनेक लोगों से जुड़ने-बिछुड़ने और संघर्ष करने की कहानी कही गयी है। 'तीसरा आदमी' में पति-पत्नी के बीच अनिवार्य परिस्थितियों में आर्थिक दबाव के फलस्वरूप तीसरे आदमी के आने और अन्ततः पति के अप्रासंगिक हो जाने की त्रासदी और उससे उत्पन्न तनाव का चित्रण किया गया है।[81] 'काली आंधी' में राजनीति के क्षेत्र में शिखर पर पहुँचने वाली आधुनिक नारी का द्वन्द्व सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। 'सुबह दोपहर शाम' में आजादी-पूर्व के भारतीय गांव का संघर्षपूर्ण जीवन चित्रित है। 'रेगिस्तान' में पुराने आदर्श के टूटने का हृदयग्राही चित्रण किया गया है। कथा-नायक 'विश्वनाथ' 1930 ई० से लेकर जीवन के अन्त तक दक्षिण में हिन्दी का प्रचार करता है। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देखता है कि न कहीं हिन्दी है और न वे राष्ट्रीय मूल्य जिनके लिए वह त्याग और तपस्या करता आया है। और वह अपना सन्तुलन खो देता है।[82]

इनकी कहानियाँ में आधुनिक भाव-बोध को स्पष्ट करने की समर्थता है। अर्थाभाव के कारण आदमी टूटता जा रहा है, वह सोचने पर मजबूर हो गया है कि एक वर्ग सम्पन्न क्यों है? और वह भाग्य के सहारे कब तक विपन्न रहेगा। उसका अंतकाल तक शोषण होता रहेगा। आर्थिक खुशहाली का सभी को इंतजार है।[83]

मोहन राकेश ने अपनी कहानियाँ के विषय में स्वयं कहा है 'मेरी अधिकांश कहानियाँ संबंधों की यंत्रणा को अपना अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ है, जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से हटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के

बीच होने का अकेलापन है, और उसकी परिणति भी किसी तरह की 'सिनिसिज्म' में नहीं, झेलने की निष्ठा में है।' महानगरीय जीवन की भागदौड़, यांत्रिकता के कारण व्यक्ति के अकेले होते जाने की मानसिकता का चित्रण मोहन राकेश ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है।[84]

मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे', 'न आनेवाला कल', 'अंतराल' आदि मुख्य हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' में दिल्ली के अभिजात वर्गीय 'हरवंश' और नीलिमा' के दाम्पत्य जीवन और उसकी विसंगतियों का चित्रण है। मोहन राकेश ने अपने साहित्य में आधुनिक संदर्भ में पुरुष-स्त्री के संबंधों, उसकी जटिलताओं, विसंगतियों, तनावों, द्वन्द्वों एवं अन्तर्विरोधों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।[85] अपने युग के यथार्थ का सशक्त माध्यम इनकी कहानियाँ है। यथार्थ और व्यंग्य साथ-साथ इनकी कहानियों में चलता है। मोहन राकेश नयी कहानी के प्रवर्तकों में से एक है। 'इन्सान के खंण्डर' (1950ई०), 'नये बादल' (1957ई०), 'जानवर और जानवर' (1958ई०), 'फाक और जिन्दगी' (1961ई०), 'फौलाद का आकाश' (1966ई०), आदि प्रमुख कहानी-संग्रह है।[86]

इन सभी कहानियो का एक संग्रह 1972 ई० में 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'जानवर और जानवर' कहानी में एक पहाड़ी स्कूल की विशेष परिस्थितियों में जीते, उसे भोगते और झेलते मास्टर, जीवन की व्यापक विवशता, पराधीनता, असुरक्षा आदि की ओर करते है। मोहन राकेश अपनी कहानी-कला के माध्यम से अपने युग के सन्दर्भो को यथार्थ, सूक्ष्म विवेचन, के साथ इस प्रकार चित्रित करते है कि इस विवेचन के द्वारा परिवेशगत असंगतियों की तीव्र

भर्त्सना हो सकें। राकेश जी ने 'फौलाद का आकाश' जैसी कुछेक ऐसी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनमें यथार्थ आरोपित एवं अवास्तविक लगता है। मोहन राकेश की कहानियों में मानव सम्बन्धों के परिवर्तन का, सम्बन्धों का ह्रास का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर हुआ है। सम्बन्धों का मर्यादाओं का यह ह्रास सभी रूपों में हुआ है। चाहे वह 'वासना की छाया में' पिता-पुत्री के रूप में हो, चाहे 'रोजगार' के माध्यम से भाई-बहन के आदर्श मूल्यों में हो अथवा 'आखिरी समान' में पति-पत्नी के सन्दर्भ में हो।[87]

राजेन्द्र यादव का नाम नयी कहानी के उन्नायकों में मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। इनके कहानी संग्रह 'देवताओं की मूर्तियाँ'(1952ई०) 'खेल खिलौने' (1954ई०) 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (1957ई०) 'अभिमन्यु की आत्म हत्या' (1959ई०) आदि प्रमुख हैं।[88]

जीवन की जिजीविषा को राजेन्द्र यादव ने अपनी कला में मूर्त रूप देना चाहा है। यादवजी ने आधुनिक भाव-बोध कला की परिष्कृत और सूक्ष्म संवेदना, संयुक्त की है। इन्होंने सामाजिक समस्याओं और प्रश्नों के समग्र और व्यापक रूप उठाकर संघर्ष-चेतना को अधिक से अधिक स्तरों और भावनाओं में देखने का प्रयास किया है। एक व्यक्ति के मानसिक उद्वेलन और अन्तर्विरोध के व्यापक रेशो को व्यापक परिवेश में देखने के कारण इनकी कहानियाँ सूक्ष्म जटिल हो गयी है।[89] राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' (1952ई०) (बाद में 'सारा आकाश' नाम से प्रकाशित), 'उखड़े हुए लोग' (1956ई०), 'कुलटा' (1958ई०), 'शह और मात' (1959ई०), 'एक इंच मुस्कान' (1963ई०), 'अनदेखे अनजाने पुल' (1963ई०) आदि

प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रेत बोलते हैं' (सारा आकाश) में मध्यवर्गीय जीवन के जड़ संस्कारों से आवद्ध 'समर' के माध्यम से पूरे समाज की जड़ता का चित्रण किया गया है। अतीत के मोह से ग्रस्त कातर और समाजभीरू 'समर' पूरे मध्यवर्ग की सामाजिक-नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।[90]

निर्मल वर्मा अकेले कहानीकार हैं जिनके पहले कहानीसंग्रह 'परिन्दे' (1960ई०) को नामवर सिंह ने 'नयी कहानी' की पहली कृति माना गया है। इसके बाद निर्मल वर्मा के 'जलती झाड़ी' (1965ई०) पछली गर्मियों में (1968ई०), 'बीच बहस में' (1973ई०), 'कव्वे और काला पानी' (1983ई०) आदि कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं।[91] निर्मल वर्मा ने केवल आज की कहानी के पहले हस्ताक्षर है, बल्कि नगर बोध सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ कहानीकार है। 'चीड़ौ पर चादनी' इसी प्रवृत्ति का प्रमाण है। निर्मल वर्मा की कहानियाँ जीवन की वे अनुभूतिया है, जिन्हें एकान्तिक अनुभूतिया कहते है। ये अन्तर्मुखी ओर व्यक्तिपरक होती है। समाज के स्थूल व वास्तविक यर्थाथ ठोस के चित्रण के विपरीत निर्मल वर्मा की चेतना आधुनिक संदर्भो में निरन्तर अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अन्तर्मन को ओर मुड़ी है। 'परिन्दे' इसी धरातल की कहानी है इसीलिए निर्मल वर्मा की कहानियाँ समकालीन कहानी में एक विशिष्ट उपलब्धि है। निर्मल वर्मा की अधिकांश कहानियाँ अतीत की स्मृति है, कहानी कहने वाला बरसों बाद उन स्मृतियों को जैसे दुहरता है। 'डायरी का खेल', 'तीसरा गवाह' आदि ऐसी ही कहानियाँ है। निर्मल वर्मा के पात्र अपने अतीत से मुक्ति के लिए छपड़पटाते हैं किंतु अतीत उन्हें छोड़ना नहीं चाहता है। इस स्तर पर निर्मल वर्मा की कहानियाँ पुराने सामन्ती मूल्यों का विरोध करती हैं। चालू नैतिकता के सामने एक चुनौती उपस्थित

करती है। निर्मल वर्मा की अधिकांश कहानियों का मुख्य विषय 'मुक्ति की छटपटाहट' है। सम्पूर्ण परिवेश में व्याप्त अमानवीय परिवेश का शिकार होते हुए, अपनी मुक्ति के लिए छटपटाहते पात्र कहानी के खत्म होते-होते अन्त में त्रासद प्रभाव डालने में सफल हो जाते है।[92]

निर्मल वर्मा ने कहानियो के साथ-साथ उपन्यास साहित्य में भी कदम उठाया है। 'लालटीन की छत' (1974ई०), 'एक चिथड़ा सुख' (1979ई०), 'वेदिन' (1964ई०), 'रात का रिपोर्टर' (1989ई०) आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। उनकी पहली कृति 'वेदिन' में 'आधुनिकताबोध' के सारे सूत्र 'अकेले पन का बोध', 'विजातीयता की अनुभूति', महायुद्ध का संत्रास, जीवन की व्यर्थता का बोध, उदासी, तनाव, अनिश्चय आदि-विद्यमान है। 'लालटेन की छत' में एक किशोरी (काया) के युवती बनने के बीच के अन्तराल की मन: स्थितियों रहस्य, आतंक, भोलापन, अकेलापन-का अंकन स्मृति चित्रों के सहारे किया गया है। 'काया' का अकेलापन उसमें हताशा, झुझलाहट की सृष्टि करता है और सब मिलाकर उसके संश्लिष्ट व्यक्तित्व को रूपायित करता है। माता-पिता तथा समव्यस्क साथियों के अभाव में एक किशोरी का कुंठित हो जाना स्वाभाविक है। 'एक चिथड़ा सुख' में 'विट्टी', इरा, मुन्नू नितीभाई की अधूरी जिन्दगियों की कहानी है। सभी पात्र अपनी पहचान की तलाश में भटक रहें है। इसलिए उनका सुख चिथड़ा हो गया है। 'रात का रिपोर्टर' में रात का अंधेरा आपातकाल का प्रतीक है। इस काल में व्यक्ति और समाज के भीतर समाये हुए गहरे संत्रास के व्यापक प्रभाव का चित्रण लेखक ने इस उपन्यास में किया है। यह उपन्यास एक प्रकार से एक व्यक्ति 'रिशी' (पत्रिका का रिपोर्टर)

के बहाने पूरे समाज की यातना-कथा है।[93]

धर्मवीर भारती नई कहानी के दौर के कहानीकार है। इनके कहानियों के दो संग्रह-'बंद गली का आखिरी मकान', 'चाँद और टूटे हुए लोग' प्रमुख है। इनकी कहानियों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन की मानसिकता का अच्छा चित्रण मिलता है। 'नयी कहानी' के दौर में उनकी 'गुलकी बन्नो' कहानी बहुत चर्चित हुई थीं। गुलकी सारी यंत्रणा झेलने के बाद भी विद्रोह नहीं करतीं उसकी मानसिकता परम्परागत संस्कारों में पली निम्नमध्यवर्गीय नारी मात्र की है।[94]

धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' (1949ई०), 'सूरज का सातवॉ घोड़ा' 1952ई० में प्रकाशित हुए। 'गुनाहों का देवता' एक भावुकता पूर्ण करुण प्रेम कहानी है। चन्दर और सुधा का प्रेम काल्पनिक किशोर भावुकता की उपज है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में इलाहाबाद के एक मुहल्ले के निम्नमध्यवर्गीय लोगों की तस्वीर पेश की गयी है। जिनका वर्तमान पीड़ाग्रस्त और भविष्य अनिश्चित है। इस उपन्यास को इसके शिल्प-वैशिष्ट्य के कारण विशेष महत्व दिया गया है।[95]

महीप सिंह का कथा-फलक व्यापक है। जीवन की छोटी से छोटी घटना को इन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया है। 'सुबह के फूल' (1959ई०), 'घिराव' (1968ई०), 'कुछ और कितना' (1985ई०), 'कितने सम्बन्ध' (1979ई०), 'दिल्ली कहाँ है' (1985ई०), आदि प्रमुख कहानी-संग्रह है। महानगरीय जीवन की यांत्रिकता और संवेदना-क्षीणता, मानवीय रिश्तों में आने वाले बदलाव और उसकी पीड़ा, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार, मनुष्य की निरीहता और लाचारी, स्त्री-पुरुषों के सहज यौन आकर्षण, दाम्पत्यजीवन की विसंगतिया और तनाव, साम्प्रदायिक संकीर्णता

का बोध, बढ़ती हुई अमानवीयता आदि का चित्रण महीप सिंह ने एक सजग रचनाकार के रूप में किया है।[96] महीप सिंह मूलत: नगर बोध के कहानीकार है, लेकिन यत्र-तत्र कस्बाई मनोवृत्ति भी दिखाई देती है। 'सीधी रेखाओं का वृत्त', 'गंध', 'प्याले' तथा 'सत्यमेव जयते' आदि प्रमुख कहानियाँ है। महीप सिंह ने कुछ कहानियाँ स्त्री-पुरूष के आपसी आकर्षण और विकर्षण पर भी लिखी हैं। 'टकराव', 'शिफ्टों में घिरा राजकुमार', 'धूप ढलने के बाद' इसी प्रकार की कहानियाँ है। 'नींद', 'टकराव', 'नाला', 'प्याले' आदि कहानियाँ में उन यौन अतृप्त लड़कियों का चित्रण है, जो यौनाभाव के कारण बीमार हो गई है। 'सत्यमेव जयते' कहानी में प्रशासन पर व्यंग्य किया गया है।[97]

महीप सिंह ने बहुत अधिक उपन्यास नहीं लिखे है। उनका एक उपन्यास 'यह भी नहीं' (1976ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसमें बम्बई के मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को 'होटलो' और 'कालेज' दो घटनास्थलों को केन्द्र बनाकर उभारा गया है।[98]

नरेश मेहता साहित्य का सम्बन्ध जीवन से मानते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में आत्मपरक दृष्टिकोण ही अपनाया है। 'निशा जी', 'अनबीता', 'व्यतीत' तथा 'एक इति श्री' आत्मपरक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिखी कहानियाँ जिसमें व्यक्ति और उसकी मन:स्थितियाँ हैं। जीवन के यथार्थ को लेकर भी इन्होंने महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखीं इनमें 'किसका बेटा' 'दुर्गा', 'वह मर्द थी' प्रमुख है। नरेश मेहता की कहानियों में निष्ठा, गरिमा और मार्यादा का संतुलित चित्रण किया गया है। उनके पात्रों को उनकी पूरी सहानुभूति मिली है और उन्हें उचित संगति में प्रस्तुत किया गया है।[99]

नरेश मेहता के उपन्यास 'डूबते मस्तूल' (1954ई०), 'धूमकेतु: एक श्रुति' (1962ई०), 'यह पथ बंधु था' (1962ई०), 'नदी यशस्वी है' (1967ई०), 'प्रथम फागुन' (1968ई०), 'उत्तरकथा' (भाग एक-1967, भाग दो 1982ई०) प्रकाशित हो चुके है। नरेश मेहता का जीवन मानवतावादी है। वे मानवीय पीड़ा का मार्मिक चित्रण करते हैं। नारी उत्पीड़न की समस्या प्राय: उनके प्रत्येक उपन्यास में देखने को मिलती है। 'डूबते मस्तूल' में रंजना के माध्य से आधुनिक मध्यवर्गीय नारी की समस्या उभर कर सामने आ जाती है। 'धूमकेतु' एक श्रुति में मातृहीन बाल 'उदयन' के मानसिक विकास का मनौवैज्ञानिक विवेचन कि गया है। 'यह पथ बंधु था' में एक आदर्शवादी संस्कार सम्पन्न दम्पत्ती 'श्रीधर' और 'सरों' के जीवन-संघर्ष की करूण कहानी कही गयी है। 'दो एकान्त' में विवेक, वानीरा और मेजर आनन्द के माध्यम से आधुनिक समाज में स्त्री-पुरूष के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों और उससे उत्पन्न तनाव का चित्रण किया गया है।[100] 'नदी यशस्वी है', धूमकेतु एक श्रुति का दूसरा खण्ड है। 'प्रथम फाल्गुन' में 'गोपा' और 'महिम' के माध्यम से आज से 50-60 वर्ष पूर्व के लखनऊ का जीवन चित्रित किया गया है। 'उत्तर कथा' (दो भाग) में मालवा के कुछ ब्राह्मण परिवारों को केन्द्र में रखकर बीसवीं शती के प्रथमार्ध की कथा कही गई है। नरेश महता ने दुर्गा, वसुन्धरा और गायत्री के माध्यम से तीन अलग-अलग संदर्भो में नारी-उत्पीड़न का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।[101]

रामदरशमिश्र नयी कविता ही नहीं नयी कहानी में भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। हर प्रकार से अपनी रचना को पाठक के मन के समीप बिठाने और पूर्ण विश्वास पैदा करने में इन्हें सफलता मिली है। इन्होंने अपनी कविता के

माध्यम से गाँव और शहर इन दोनों की जिन्दगी के अनेक धुँधले और उजले चित्र उभारे है। रामदरशमिश्र नें इन दोनों संदर्भो में गाँव की लाचारी, नंगी बेबसी का चित्र बड़ी ही सूक्ष्मता से व्यंजित किया है। 'माँ', 'सन्नाटा', और बैजता हुआ रेडियो' में लेखक ने गाँव की गरीबी का चित्र बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया है और यह मार्मिकता उस समय और भी गहरी उतर जाती है। जब बीमार के लिए दवा का तो प्रश्न ही क्या पथ्य में अन्न भी नहीं मिल पाता। यह एक गाँव की ही नहीं, हिन्दुस्तान के गाँवों की गाथा है। इसी प्रकार 'खाली घर' मौत की छाया और सूखेपन की अभिव्यंजना करनें वाली सफल कहानी है। 'मंगल यात्रा' में मिश्रजी ने ग्रामीण अंधविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़ने का प्रयास किया है। 'एक और यात्रा' में शहरी जिन्दगी का खालिस दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियों में शहरी जीवन की यांत्रिकता, तनाव और घुटन की अभिव्यक्ति हुई है। इन्होंने यह भी अनुभव किया है कि औद्योगिक विकास ने भागदौड़ और भीड़ की सभ्यता को जन्म दिया है। इस पीड़ा में भटका हुआ आदमी अपने को ही बेगान और अजनबी समझने लगता है। इस प्रकार मिश्रजी ने शहर और गाँव की वास्तविकताओं को केवल ओढ़ा ही नहीं, बल्कि उसे जैसे का वैसा कथा-साहित्य के रूप में पाठकों के समक्ष रख दिया है।[102]

रामदरश मिश्र ने आंचलिक उपन्यास के साथ-साथ अन्य संदर्भ से जुड़े हुए महत्वपूर्ण उपन्यास भी लिखें हैं। 'बीच का समय' (1970ई०), 'सूखता हुआ तालाबा' (1972ई०), 'रात का सफर' (1976ई०), 'अपने लोग' (1976ई०), 'बिना दरवाजे का मकान' (1984ई०), 'दूसरा घर' (1986ई०) आदि इनके प्रमुख उपन्यास है।

'बीच का समय' में अनमेल विवाह की त्रासदी से पीड़ित प्रोफेसर 'शील' और उसकी छात्रा 'रीता' के सहज आकर्षण और उससे उत्पन्न तनाव का बड़ा ही यथार्थ चित्र खींचा गया है। 'सूखता हुआ तालाब' में अपनी जड़ नैतिकता के बन्धन में जकड़े हुए गाँव के क्रमशः सूखते हुए जीवन-रस का चित्रण किया गया है। 'रात का सफर' में एक ही रात की ट्रेनें-यात्रा में (ऋता) का छः महीनें का अनुभव मूर्त हुआ है।[103] 'अपने लोग' बड़ा उपन्यास है। इसमें कथा के केन्द्र में गोरखपुर नगर है। किन्तु नगर की कथा के साथ गाँव भी जुड़ा है। इसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गाँवों और नगरों में होने वाले सामाजिक, राजनीतिक और संस्कृति बदलाव का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। प्रतिबद्ध और निष्ठावान नेताओं का स्थान मौकापरस्त और तिकड़मी लोगों ने ले लिया है। यांत्रिक सभ्यता मनुष्य की अन्तरात्मा को कुचलकर उसे उसे अमानवीय बना रही है। गाँव के पुराने रीति-रिवाजों के साथ सहज आत्मीयता और भाई चारा भी समाप्त हो रहा है। 'आकाश की छत' में बाढ़ की विभीषिका से घिरे हुए मनुष्य की मानसिकता का यथार्थ चित्र खींचा गया है। 'बिना दरवाजे का मकान' में दीपा जैसी कर्मठ नारी का जीवन-संघर्ष और अनेक दबाओं के बीच उसकी अपराजेय जिजीविषा का प्रभाव एवं मार्मिक चित्रण किया गया है। 'दूसरा घर' में भिखमंगे का बेटा कमलेश्वर एम0ए0 करने के बाद गुजरात के एक महानगर में प्रवेश करता है। वहाँ उसे अपने गाँव की याद आती है।[104]

महेन्द्रभल्ला ने आज के जीवन की नवीन स्वीकृतियों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। जिसकी स्पष्ट छाया 'बदरंगदीक्षा', 'दिन शुरू हो गया' आदि कहानियों पर दिखाई देती है। हिन्दी कहानियों में प्रेम सम्बन्धों को सेक्स से अलग

करके देखा गया है। सेक्स को अश्लील मानकर उसका साहित्य में प्रवेश निषेध माना है। महेन्द्रमल्ला इस स्तर में अन्य कहानीकारों से पृथक हैं। उन्होंने प्रेम और सेक्स को एक मानकर कहानियाँ लिखी है। सेक्स सम्बन्धों के स्थायित्व के लिए आवश्यकता के रूप में उनकी कहानियो में आया है। इस परिपेक्ष्य में 'एक पति के नोट्स', 'एक चीज', 'बीच में' आदि उल्लेखनीय रचनाएं है। पुरुष ही नारी के प्रति आकृष्ट नहीं होता अपितु नारी को भी पुरूष की आवश्यकता होती है। यह तथ्य 'अक्षर इण्डिया' में उजागर हुआ है। प्रेम तथा सेक्स के स्वस्थ चित्रों को सहज शिल्प के माध्यम से महेन्द्र भल्ला ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है।[105]

महेन्द्र भल्ला के तीन उपन्यास -'एक पति नोट्स' (1967ई०), 'दूसरी तरफ' (1976ई०), 'उड़ने से पेश्तर' (1987ई०) में प्रकाशित हुए है। 'एक पति के नोट्स' में नायक अपनी पत्नी सीता की एकरसता से बोर होकर अपने पड़ोसी की पत्नी संध्या की ओर आकर्षित होता है। उसे घर बुलाकर शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करता है। किंतु यहाँ भी उसे कुछ नया अनुभूत नहीं होता है। लेखक ने इस उपन्यास में सेक्स के माध्यम से आज के जीवन की ऊब और निरर्थकता को प्रकट किया है। 'दूसरी तरफ' में नायक जीविका की तलाश में विलायत जाता है। वहाँ के जीवन के शिष्टाचार, व्यवस्था, आत्मनिर्भरता आदि देखकर प्रभावित होता है। किन्तु ट्रेनों, फेक्ट्रियों के यन्त्रवत जीवन से ऊब जाता है। और अकेलापन, महसूस करता है। 'उड़ने से पेश्तर' में 'दूसरी तरफ' के बाद की स्थिति का चित्रण है। वह भारत लौटने पर बेरोजगारी और भूख से मरने की कल्पना से आंतकित होता है। और इंग्लैण्ड में रहना ही बेहतर समझता है।[106]

भीष्म साहनी के कहानी संग्रह 'भाग्य रेखा' (1953ई०), 'पहला पाठ' (1957ई०), 'भटकती राख' (1960ई०), 'वाङ्चू' (1978ई०), 'शोभायात्रा' (1981ई०), 'निशाचर' (1983ई०), 'पाली' (1989ई०) आदि प्रकाशित हो चुके हैं। भीष्म साहनी अपनी प्रगतिशील जीवन-दृष्टि के लिए प्राख्यात है। 'नयी कहानी' के दौर में इनकी 'अमृतसर आ गया', 'ओ हरामज़ादे', 'बाङ्चू', और 'त्रास' आदि कहानियाँ बहुत पसन्द की गई। भीष्म साहनी को पीड़ित मानवता से अपार सहानुभूति है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के लोगों की जीवन-स्थितियों से वे परिचित हैं, इसीलिए इसकी विडम्बनाओं को सहज ही उजागर कर देते है। इनका कथा-संसार व्यापक है। उन्होंने जीवन के विविध-संदर्भों में मानवीय संघर्ष को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। सत्ता और व्यवस्था के खोखलेपन को उन्होंने बड़ी ही सहजता और निर्भीकता से उँधेडा है।[107]

भीष्म साहनी के उपन्यास 'झरोखे' (1967ई०), 'कड़ियाँ' (1970ई०), 'तमस' (1973ई०), 'वसन्ती' (1980ई०), 'मय्यादास की माड़ी' (1988ई०) आदि प्रकाशित हो चुके है। 'झरोखे' में एक आर्यसमाजी संस्कारों वाले मध्यवर्गीय परिवार में घटित छोटी-छोटी घटनाओं को स्मृति-चित्रों के रूप में संजोया गया है। 'कड़िया' में विपरीत संस्कारों वाले मध्यवर्गीय पति-पत्नी की जीवन कथा कही गयी है। 'तमस' भीष्म साहनी का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है। इसमें लेखक ने मार्च-अप्रेल में हुए भीषण साम्प्रदायिक दंगे की पॉच दिनों की कहानी इस रूप में प्रस्तुत की है कि हम देश-विभाजन के पूर्व की सामाजिक-मानसिकता और उसकी अनिवार्य परिणति की विभीषिका से पूरी तरह परिचित हो जायें। 'वसंती' एक ऐसी लड़की की कहानी है।

जो दिल्ली की झुग्गी-झोपड़ी में पली है। जैसे झुग्गी-झोपड़ी को उजाड़ा जाता है। वैसे ही वसन्ती का जीवन भी बार-बार उजड़ता है। 'मय्यादास की माड़ी' भी भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें उन्नीसवीं शती के मध्य से बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध का इतिहास 'मायादास' की माड़ी (हवेली) को केन्द्र बनाकर प्रस्तुत किया गया है।[109]

गंगा प्रसाद विमल की अधिकांश कहानियाँ बदलती मॉनसिक वृत्ति जीवन की विद्रूपता तथा निरर्थकता को स्वर देती है। व्यंग्य के साथ-साथ फैंटेसी के द्वारा लेखक ने यथार्थ को पूरी ईमानदारी से व्यक्त किया है। 'प्रेत' और 'धूप का किस्सा' ऐसी ही कहानियॉ है। इनकी कहानियाँ एक मन: स्थिति से प्रारम्भ होकर उसी क्षण की अनुभूति में समाप्त भी हो जाती है। 'कोई शुरूआत', 'नाटक अधूरा', 'शीर्षक हीन', 'झूठ' 'अभिशाप', 'बीच की दरार' ऐसी ही कहानियाँ है। 'प्रश्नचिन्ह' तथा 'अतीत राग' उनकी सशक्त कहानियाँ मानी जाती है।[110]

गंगा प्रसाद विमल ने 'अपने से अलग', 'कहीं कुछ', 'मरीचिका', 'मृगान्तक' आदि कई उपन्यास लिखें। 'अपने से अलग' में एक ऐसे परिवार का चित्रण है, जिसमें पिता अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर दूसरी पत्नी के साथ रहता है। उसके इस आचरण ने पूरे परिवार को तोड़ दिया है।'कहीं कुछ और' में प्रतीक्षारत प्राणियों की कहानी कही गयी है। 'मरीचिका' में कफ्कू, संत भजन सिंह और मै इन तीन पात्रों के माध्यम से स्वाधीनतापूर्व और स्वाधीन भारत के जीवन-मूल्यों के विरोध को रेखांकित किया गया है। 'मृगान्तक' एक छोटा उपन्यास है। इसमें नायक अनुभव करता है, कि तन्त्र-साधना के नाम पर जनता का शोषण किया जाता है।

काशीनाथ सिंह का नाम सातवें दशक की हिन्दी कहानी में उल्लेखनीय

है। इनकी कहानियाँ सामाजिक चिंताओं से युक्त समझदारी से परिपूर्ण कहानी है। सिंहजी की दृष्टि सुस्पष्ट का वैचारिक है। शिल्प के प्रति इनका उत्तरदायित्व पूर्ण है। 'नयी तारीख' (1979ई०) 'सुबह का डर' (1975ई०) 'आदमीनामा' (1978ई०) 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' इनके प्रमुख कहानी संग्रह है।[111]

काशीनाथजी व्यंग्य को प्रस्तुत करने के लिए परिवेश और व्यक्ति का सहारा लेकर अपने सामर्थ्य को प्रस्तुत करते है। कभी फैंटेसी, कभी सहज हास्य, कभी जिन्दगी की कड़वाहट और कभी मानवीय अज्ञान गहरे व्यंग्य का विधायक बनता है। इनके पात्र लड़ने की शक्ति लिए हुए है। ज़िन्दगी से घबराकर भागते नहीं है।[112]

गिर्राज किशोर के साहित्य का मुख्य स्वर आज का संघर्ष है जिसे आज का आदमी आम रूप में स्वीकार कर रहा है। समकालीन शहरी जीवन की कुरुपता को इन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया है।

गिरिराज किशोर के उपन्यास 'लोग' (1966ई०), 'चिड़ियाघर' (1968ई०), 'यात्राए' (1971ई०), 'जुगलबन्दी' (1973ई०), 'दो' (1974ई०), 'इन्द्र सुने' (1978ई०), 'दावेदार' (1979ई०), 'यथाप्रस्तावित' (1982ई०), 'तीसरी सत्ता' (1982ई०), 'परिशिष्ट' (1984ई०), 'असलाह' (1987ई०), 'अंतर्ध्वस' (1990ई०), 'ढ़ाई घर' (1991ई०), मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। लोग में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के ऐसे विशिष्ट लोगो का चित्रण हुआ है। जो देश में नयी जन-शक्ति के उदय होने से अपने को असुरक्षित अनुभव कर रहे थे। 'चिड़ियाघर' में रोजगार दफ्तर के काले कारनामों का पर्दाफाश किया गया है। 'यात्रा' पति पत्नी के बीच की मानसिक दूरी की यात्रा है। यह यात्रा अंत तक अधूरी ही रहती है। 'युगलबन्दी' इनका बड़ा उपन्यास है। इसमें अंग्रेजी

साम्राज्य के साथ ढ़हती हुई सामन्तशाही और कांग्रेस के रूप में नये सत्ताधीशों के उदय का चित्रण एक साथ किया गया है। लेखक ने सामन्ती मूल्यों के टूटने-बिखरने का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। 'दो' में एक ऐसी नारी(सीमा) की कहानी कही गयी है जो आजीवन दो पुरुषों के बीच फंसी हुई दयनीय जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशिप्त है। लेखक ने नारी के प्रति सहानुभूति और व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न करने में पूरी सफलता प्राप्त की है।[113]

प्रमुख समकालीन महिला कथाकारों में शिवानी (1923ई०), कृष्णा सोवती (1925ई०), मन्नू भण्डारी (1931ई०), ऊषा प्रियंवदा (1931ई०), मंजुलभगत (1936ई०), मृदुलागर्ग (1938ई०), ममता कालिया (1940ई०), मेहरुन्निसा परवेज (1944ई०), चित्रामुदगल (1944ई०) मृणाल पाण्डे (1946ई०), नासिरा शर्मा आदि का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। इनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है।

शिवानी के कथा साहित्य में रहस्य, रोमांच, भावुकता, स्वच्छंद कल्पना और मनोरंजन का पुट देखने को मिलता है जो उन्हें पठनीय बनाता है। शिवानी पर शरत् का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है, किन्तु उनकी सहजता का अभाव है। शरत के नारी पात्र अपनी पीड़ा में अपराजेय है। शिवानी के नारी पात्र विद्रोह भी करते हैं और परिस्थितियों से ऊपर उठने की कोशिश भी शिवानी ने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक उपन्यास लिखे है। उनके उपन्यासों में 'चौदह फेरे' (1965), 'कृष्ण कली' (1968ई०), 'भैरवी' (1969ई०), 'विषकन्या' (1970ई०), 'करिए छिमा' (1971ई०), 'माणिक' (1977ई०) आदि लोकप्रिय हुए है। इनकी कहानियो पर बंगला कहानियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनके कुछ कहानी संग्रह 'लाल हवेली' (1965ई०), 'पुष्पहार'

(1969ई०) आदि प्रकाशित हुए है। शिवानी की कहानियो में जीवन के खुरदरे यथार्थ से अलग एक भावना-पूर्व संसार निर्मित हुआ है।[114]

समकालीन महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती का नाम प्रमुख है। अपनी लम्बी कहानी 'मित्रों मरजानी' (जिसे लघु उपन्यास भी कहा गया है) के साथ हिन्दी कथा-साहित्य में चर्चित हो उठी थीं 'मित्रों' के रूप में हिन्दी कहानियो में पहली बार एक ऐसे नारी पात्र की सृष्टि हुई है, जिसमें देहधर्म के उफनते ज्वार के सहज स्वीकार की सम्पूर्ण साहसिकता है।[115] इनके दो उपन्यास 'सूरजमुखी अँधेरे के' (1972ई०) और जिन्दगीनामा (1979ई०), विशेष प्रसिद्ध है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' में नारी जीवन की एक मनोवैज्ञानिक समस्या को उभारा गया है। 'रत्ती' बचपन में बलात्कार का शिकार हो जाती है, इसका मनोवैज्ञानिक असर होता है। वह असहिष्णु, क्रूर और फ्रिजिड हो जाती है। अन्त में दिवाकर के सम्पक्र में आती है, उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे पूर्ण समर्पण कर देती है और इस प्रकार उसे कामविकृति से मुक्ति मिल जाती है। 'जिन्दगी नामा' हिन्दी ही नहीं, अपितु भारतीय साहित्य के एक बड़े उपन्यास के रूप में जाना जाता है। इसमें पंजाब की विगत शती की जिन्दगी का पूरा ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।[116]

मन्नूभण्डारी ने अपने दो उपन्यासों 'आपका बंटी' (1971ई०) और 'महाभोज'(1979ई०) के बल पर अक्षय ख्याति अर्जित की है। 'आपका बंटी' बाल मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हिन्दी भाषा में अपने ढंग का विशिष्ट उपन्यास है। मन्नूजी ने 'बंटी' के मनोविज्ञान का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। 'महाभोज' एक राजनीतिक उपन्यास माना गया है। इसका परिवेश वैयक्तिक या पारिवारिक न

होकर राजनीतिक है। 'महाभोज' इस तथ्य का साक्षी है, कि अब महिला लेखिकाऐं घर की चहारदीवारी के भीतर उभरी-दबी पारिवारिक समस्याओं तक सीमित न रहकर समाज के व्यापक संदर्भो से जुड़कर जनहित में उत्कृष्ट सुजन कर रही है। मन्नू भण्डारी ने बदले हुए परिवेश में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे नारी के द्वन्द्व को बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया है।[117] 'मै हार गई' (1957ई), 'यही सच है' (1966ई०), 'एक प्लेट सैलाब'(1968ई०), त्रिशंकु (1978ई०) इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। मजदूर वर्ग की असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का चित्रण भी उन्होंने अपने साहित्य में किया है। 'रानी माँ का चबूतरा' इसी तरह की कहानी है। इन्होंने भावुकता से हटकर खुले दिमाग से नारी जीवन की वास्तविकता को देखा है और उसे बड़ी सादगी के साथ व्यक्त किया है। स्वातंत्रयोत्तर काल में हुए नारी जीवन के परिवर्तनों को और आज की आधुनिकता पर उन्होंने व्यंग्य किया है। मन्नूजी के नारी मात्र कभी-कभी प्रसाद के नारी पात्रों के समर्पण की सीमा को भी छू जाते है। क्योंकि मन्नू भण्डारी नये तथा पुराने दोनों प्रकार के पाठकों के लिए लिखती हैं।[118]

ऊषा प्रियंवदा नई कहानी के दौर की बहुचर्चित कहानीकार है। उनकी 'वापसी' कहानी आलोचकों के मन-मस्तिष्क पर छा गई थीं 'कितना बड़ा झूठ' (1972ई०), 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (1961ई०), 'फिर बसंत आया' (1961ई०), 'एक कोई दूसरा' (1966ई०) इनके कहानी संग्रह है। उनकी अधिकांश कहानियाँ उन शिक्षित युवतियों की कहानियाँ है जो स्वच्छन्द और अकुण्ठ जीवन व्यतीत करने के सपनों को लेकर विदेश जाती है किन्तु वहां की उपभोगवादी संस्कृति से टकराकर उनके

सपने टूट जाते हैं और उनकी जिन्दगी त्रासदी में बदल जाती है।[119] ऊषा प्रियंवदा के उपन्यासों में 'नयी कविता' के दौर की आधुनिकता के सारे तत्व-अकेलापन, संत्रास, ऊब, घुटन, अजनबीपन-विद्यमान है। इनके तीन उपन्यास 'पचपन खम्भे, लाल दीवारे' (1984ई०), 'रूकोगी नहीं राधिका' (1967ई०), 'शेषयात्रा' (1984ई०), प्रसिद्ध है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में उषा प्रियम्बद ने 'सुषमा' नामक एक मध्यवर्गीय नारी को केन्द्र में रखकर आधुनिक नारी की मानसिक यंत्रणा का सजीव अंकन किया। 'शेषयात्रा' में अनु प्रणव से ब्याह करके अमेरिका चली जाती है। वहाँ उसे शीघ्र ही अहसास हो जाता है कि प्रणव के लिए उसका महत्व उपभोग-सामग्री से अधिक नहीं है।[120] इस उपन्यास में भी आधुनिक नारी की समस्या को ही केन्द्र में रखा गया है किन्तु यहाँ वह असहाय और असुरक्षित नहीं है, अपितु वह स्वालम्बन, आत्मगौरव, सम्मान और स्वातन्त्रय भाव के बल पर निखर कर नये जीवन-यथार्थ में नये विश्वास के साथ प्रतिष्ठित हो चुकी है।

मंजुल भगत मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों एवं अधिक दबाव के बीच टूटने-बिखरते पात्रों की मन: स्थितियों को चित्रित करने वाली विशिष्ट कथाकार है। इन्होंने नारी जीवन की त्रासदी को अनेक संदर्भो में उभारने की कोशिश की है। उनकी रचना को केन्द्र बिन्दु 'नारीमन' है। उनके यहाँ 'खातुल-, 'जरी खानम' आदि नारी पात्रों को सहानुभूति मिली है। 'अनारो' (1977ई०), 'बेगानेघर में' (1978ई०), 'खातुल' (1983ई०) 'तिरछी बौछार' (1984ई०) इनके प्रमुख उपन्यास है। 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' (1976ई०), 'क्यो छूट गया' (1976ई०), 'आत्महत्या के पहले' (1979ई०), 'कितना छोटा सफर' (1979ई०), 'बावन पत्ते एक जोकर', सफेद कौआ (1986ई०)

आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह है।[121]

मंजुल भगतकृत 'गुलमोहर के गुच्छे' (1974ई०) कहानी सग्रंह में मुख्यत: नारी के विभिन्न रूपों और स्थितियों का ही चित्रण किया गया है। उसमें नपुंसक पति की मर्यादा की रक्षा करने के लिए स्वयं को दोषी स्वीकारने वाली बहू, शराबी पति को झेलती हुई पत्नी, साहबों जैसा आचरण न करने पर अपने परिवार और पति को छोड़कर भाग जाने वाली 'आया' अपने जीवन रंगीन बनाने के लिए क्लबों और रेस्तरां में समय बिताने वाली मेम साहब, आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करके माँ और बहन की मदद करती युवती आदि नारी के अनेक रूपों का चित्रण किया गया है।[122]

मृदुलागर्ग प्रेम और काम संबंधों का आधुनिक दृष्टि से खुला विश्लेषण करने वाली एक सशक्त कथाकार के रूप में चर्चित है। आधुनिक जीवन के बदलते माहौल में परम्परागत नैतिक मूल्यों के विघटन, सामाजिक रिश्तों का खोखलापन, प्रेम और विवाह से सम्बद्ध समस्याऐं, सेक्स जीवन की विसंगतियाँ और मानसिकता, बलात्कार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव और उससे मुक्ति, उच्चवर्गीय अत्याधुनिक जीवन की विसंगतियाँ, विदेशों में बसे भारतीयों की मानसिकता आदि अनेक जीवन संदर्भो को केन्द्र में रखकर आपने कथा-साहित्य की नयी जमीन तैयार की है।[123] इनकी कहानी 'कितनी कैदें' ऐसी कहानी है, जिसमें सेक्स की समस्या को विशेष रूप में खुलेपन के साथ निरुपित किया गया है।

'उसके हिस्से की धूप' (1975ई०), 'वंशज' (1976ई०), 'चित्तकोबरा' (1979ई०), 'अनित्य' (1980ई०), 'मै और मैं' (1984ई०) इत्यादि इनके प्रमुख उपन्यास हैं। मृदुला गर्ग ने अपनी पहचान अभिजात वर्गीय नारी के स्वातंत्रय प्रेम-विवाह,

वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब, ताजगी की तलाश में पर पुरूष की ओर झुकाव तथा प्रेम की अनुभूति के सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से मानव-जीवन की सार्थकता की तलाश, द्वारा बनायी थीं "अनित्य" में इन्होंने गाधीवाद की व्यर्थता और सार्थकता प्रमाणित करने की चेष्टा की है। "मैं और मैं" में मृदुलाजी ने एक ऐसी स्त्री की अस्मिता की खोज की है, जो कथालेखिका भी है।[124]

ममता कालिया यथार्थ धर्मी कथाकार है। ममता जी की कहानियाँ जीवन के वृहत्तर आयामो को स्पर्श करती है। इन्होंने स्त्री को लेकर आरोपित सामायिक ढ़ाके को तोड़कर समीक्षकों का ध्यान आकर्षित किया है। उनकी दृष्टि निर्भीक और स्पष्ट है। इनकी कहानियों में छिपाव नहीं है। ममताजी ने कहानियो में नारी को पुरुष के समान्तर स्थान देने का प्रयत्न किया है। कहानियो में नर-नारी संबंधों को ठण्डेपन की दृष्टि से उजागर किया गया है। 'छुटकारा' इसी तरह की भावभूमि पर आधारित कहानी संग्रह है। प्रेम के साथ सेक्स का भी चित्रण इनके साहित्य में दिखने को मिलता है। इन्होंने नारी को आदर्श के पर्दे में छिपाया नहीं, बल्कि उसकी शारीरिक और भौतिक आवश्यकताओं का पक्ष लेती है।[125]

'बेघर' (1971ई०), 'नरक दर नरक' (1975ई०), 'प्रेम कहानियाँ' (1980ई०) आदि कई उपन्यास ममताजी ने लिखे। 'बेघर' में इन्होंने संस्कारबद्ध पुरुषमन पर गहरी चोट की है। ममता जी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि, नारी की पवित्रता की कसौटी उसकी मानसिक एकात्मकता और समर्पण है, शारीरिक कुआरापन नहीं। 'प्रेम कहानी' में ममता कालिया ने स्वेच्छा से किये गये प्रेम और सामाजिक स्वीकृति से किये गए विवाह को समानान्तर रखकर दोनों की विडम्बनाओं को उजागर

करने का प्रयत्न किया है।[126]

मेहरुन्निसा परवेज़ निम्न मध्यवर्ग के दुख-दर्द को शुद्ध मानवीय धरातल पर चित्रित करने वाली लोकप्रिय कहानी लेखिका है। उनके साहित्य में आदिम जातियों के अंधविश्वास, महानगरों में खोलियों में रहने वाली स्त्रियों के दुख-दर्द, आर्थिक तंगी में जीवन व्यतीत करते नौकरी पेशा लोगों का मानसिक तनाव, बेमेल विवाह की त्रासदी, महानगरीय मध्यवर्गीय नारियों की घुटन, रिक्तता और द्वन्द्व, तलाक शुदा औरतों की त्रासदी, वर्तमान सामाजिक ढ़ाचे से मुक्ति चाहती नारी की छटपटाहट, सास का अत्याचार, पतियों का निकम्मापन, अवैध संबंध, सौतेली माँ का अत्याचार आदि अनेक मनस्थितियाँ देखी जा सकती है। 'आदम और हव्वा' (1972ई०), 'टहनियों पर धूप' (1977ई०), 'फाल्गुनी' (1978ई०), 'गलत पुरूष' (1978ई०), आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।[127]

'आँखों की दहलीज' (1969ई०) 'उस का घर' (1972ई०) 'कोरजा' (1977ई०) 'अकेला पलाश' (1981ई०) इनके प्रमुख उपन्यास है। मेहरून्निसा परवेज के उपन्यासों में उपर्युक्त संदर्भो में नारी जीवन की विवशता के अत्यन्त मार्मिक चित्र अंकित किये गये है। वस्तुतः आज भी नारी की स्थिति में विशेष परिवर्तन लक्षित नहीं होता है। वह दूसरों को छाया, शीतलता और ऊष्मा दे सकती है, दे देती है, किन्तु स्वयं मजबूर, असहाय और विवश होकर जीने के लिए अभिशिप्त है। इन्होंने नारी के इसी अभिशिप्त जीवन को अपने कथा साहित्य में रेखांकित किया है।[128]

चित्रामुदगल के साहित्य का धरातल अत्यन्त व्यापक है। उनकी

कहानियों में आधुनिक नारी की पूरी पहचान होती है। इनके साहित्य में कामकाजी नारी का भावात्मक संघर्ष, उसके विभिन्न परिपेक्ष्य, मानवीय संबंधों के नये बिन्दु, बेकार नवयुवकों की मन: स्थिति, आदि का चित्रण देखने को मिलता है। इन्होंने महानगरीय जीवन में संबंधों के अलगाव को भी उकेरा है तो पति-पत्नी संबंधों के टूटने के नये कोण भी उठाये है।[129] 'जहर ठहरा हुआ' (1980ई०), 'लाक्षाग्रह' (1982ई०), 'अपनी वापसी' (1983ई०), 'इस हमाम में', 'ग्यारह लम्बी कहानियाँ' (1987ई०) आदि प्रकाशित कहानी-संग्रह है। इन कहानियाँ में भिखारी है, युवा भिखारिनें है, सफेद पोश चेहरे है, पुलिस के सिपाही है, मोटर ड्रावर है, मेहनत मजदूरी करने वाली स्त्रियाँ है। इन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि, इन तमाम लोगों, विशेषकर स्त्रियों, के शोषण के मूल में हमारी सामाजिक दायित्वहीनता ही एक कारण है।[130]

चित्राजी का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' (1990ई०) बहुचर्चित हुआ। इसमें नारी पात्र नित्य के शोषण से ऊबकर अंत में आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाती है। सम्पूर्ण उपन्यास में स्त्रीशोषण के संबंध में संचार माध्यमों के भोगवादी दृष्टि का पर्दाफाश करने का प्रयत्न किया गया है।

चन्द्रकांता ने अपने कथा-साहित्य में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों के विघटन और पारम्परिक मूल्यों एवं नयी मानसिकता के बीच उभरने वाले अन्तर्विरोधो का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। 'बाकी सब खैरियत है' (1988ई०) 'ऐलान गली जिन्दा है' (1984ई०) आदि इनके मुख्य उपन्यास है। 'ऐलान गली जिन्दा है' में लेखिका ने कश्मीर की 'एक गली' के जीवन को चित्रित किया है। आज भी इस गली के जीवन में प्रकाश की किसी रेखा के दर्शन नहीं होते है। सदियों पुरानी

मान्यताएँ, सड़े-गले विश्वास, कचरा, दुख-दर्द, सीलन और कीचड़ विद्यमान है।[131] चन्द्रकांता मानती हैं, कि राग-संबंध किसी आचार संहिता के आधार पर विकसित होते। यदि ऐसा होता तो 'पत्थरों के राग' की सोनल, विवाहित सोनल, पैंतीस वर्षीया अविवाहित और दो बच्चों के पिता सतीश से भावात्मक या शारीरिक स्तर पर नहीं जुड़तीं अपनी कहानियो में यदि वे कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रित करती हैं, तो दूसरी ओर उनकी कहानियो में झूठ और छदम के विरोध में सक्रिय संघर्ष करने वाले पात्रों की उपस्थिति सहज देखी जा सकती है। ''ओ सोन केसरी'' को लोक कथा की अपेक्षा आज की स्त्री के लिए स्वाभिमान और अपने स्वत्व की रक्षा करते हुए जीना कठिन है। लेकिन चंद्रकाता के अनेक स्त्री-पात्रों को लोककथा की यह परम्परा जैसे विरासत में मिली है।[132]

शशि प्रभा शास्त्री मुख्यत: बदले हुए जीवन-संदर्भ में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का विश्लेषण करने वाली कथा-लेखिका हैं। इनके 'धुली हुयी शाम' (1969ई०), 'अनुत्तरित' (1975ई०), 'दो कहानियों के बीच' (1978ई०), 'जोड़-बाकी' (1969ई०), प्रमुख कहानी-संग्रह है। इन्होंने अपनी कहानियों में शिक्षित मध्यवर्गीय परिवारों के दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इनका सारा विवेचन-समृद्ध हैं। इन्होंने अपनी कहानियो में मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष को भी व्यक्त किया है।[133]

शशि प्रभा शास्त्री ने कई उपन्यास भी लिखें है। 'अमलतास' (1968ई०), 'नावें' (1974ई०), 'सीढ़िया' (1976ई०), 'परछाइयों के पीछे' (1979ई०), 'ये छोटे महायुद्ध' (1988ई०), 'उम्र एक गलियारे की' (1989ई०), 'सागर पार संसार'

(1989ई०) इनके प्रमुख उपन्यास है। इनके उपन्यासों में जीवन के विविध संदर्भो में नारी की पीड़ा और उसके संघर्ष को ही उभारा गया है। वर्तमान पीढ़ी के भटकाव, पारिवारिक जीवन और बाह्य तनाव, आत्मनिर्भर होने के लिए उसके द्वारा किये जाने वाले संघर्ष, आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद परिवार की मर्यादा का अतिक्रमण न कर पाने की विवशता, आदि का बड़ा ही सजीव चित्र इन्होंने खीचा है। नारी के परम्परागत त्याग, तपस्या समर्पण तथा सेवा-भाव को इन्होंने विशेष महत्व दिया है।[134]

राजीसेठ नें व्यक्ति-मन के पर्त-दर-पर्त विश्लेषण के द्वारा उसके दुख-दर्द को उजागर करनें की अपनी विशिष्ट क्षमता के कारण अपनी अलग पहचान बनाई है। 'अन्धे मोड़ से आगे' (1979ई०) 'तीसरी हवेली' (1981ई०), 'यात्रा मुक्त' (1987ई०) इनके प्राख्यात कहानी-संग्रह है। इनकी कृतियों में पीढ़ियों के अन्तराल के कारण टूटते-बिखरते मूल्य और उसकी पीड़ा। वृद्ध जीवन का अकेलापन, प्रेम विवाह की असफलता, नारी की स्वातन्त्रता-भावना, पति का अहंकार, पत्नी के प्रति अमानवीय व्यवहार, होटलों और क्लबों की संस्कृति, मानवीय सम्बंधों का विरूपीकरण आदि का गहन मनोवैज्ञानिक जटिलता के साथ चित्रण हुआ है। 'सदियों से' दांम्पत्य की धवलता को सिद्ध करने के लिए सूली पर टँगी स्त्री की पीड़ा का साक्ष्य है। 'तदुपरान्त' में एक विधवा प्रौढ़ा की पारिवारिक असुरक्षा और मृत पति की स्मृतियों का चित्रण है। 'विकल्प' में एक ऐसे भारतीय का चित्र है जो भारत का गरीबी और बदहाली के उद्घाटन को अपने विदेश में बस जाने के जस्टिफिकेशन के रूप में देखता है। 'अमीनों' में संस्कारों के तनाव को गरीबी को बारीकी से अंकित किया गया है।[135]

राजी सेठ ने 'तत्सम' लिखकर हिन्दी-उपन्यास के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। यों तो 'तत्सम' एक प्रेम-कथा है और इसमें स्त्री-पुरूष संबंधों का ही विवेचन किया गया है किन्तु यह सबकुछ इतना सुसंस्कृत, सूक्ष्म और प्रौढ़ है कि पूरी रचना सामान्य प्रेम-कथा से बिल्कुल अलग और विशिष्ट बन गयी है, इसमें वसुधा के पति निखिल की एक दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। वह एक अपने लिए एक ऐसे पुरूष की तलाश करती है, जो एक प्रेमी या स्वामी ही न हो, अपितु सच्चा सहयात्री भी हो। लम्बी यात्रा के बाद वह आनन्द को वरण करती है। इतनी सी कथा को माध्यम बनाकर राजी सेठ ने नारी-जीवन की सार्थकता का गंभीर विवेचन किया है। इसमें वर्तमान विश्वविद्यालीय व्यवस्था के खोखलेपन को भी बेनकाव किया गया है।[136]

दीप्ति खण्डेलवाल नारी मन के विविध स्तरों और पर्तो का सूक्ष्म विश्लेषण करने वाली विशिष्ट कथा-लेखिका है। 'कड़वे सच', 'धूप के अहसास' (1976ई०), 'वह तीसरा' (1976ई०), 'सलीब पर' (1977ई०), 'दो पल की छाव' (1978ई०), 'नारीमन' (1979ई०), 'औरत और बातें' (1980ई०) आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह है। इन्होंने आधुनिक संदर्भ में परम्परावादी सामाजिक मानसिकता पर बार-बार प्रहार किया है। इन्होंने स्त्री-पुरुष सम्बंधों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। नारी के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति है। वे उनकी प्रत्येक प्रकार की पीड़ा से परिचित है।[137] दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में 'प्रिया' (1976ई०), 'कोहरे' (1977ई०), 'प्रतिध्वनियाँ' (1978ई०), 'वह तीसरा' (1976ई०) आदि प्रमुख है। इनमें नारी-मन का सूक्ष्म विश्लेषण है।

आज के बदले हुए माहौल में स्त्री-पुरूष सम्बंधों में जो जटिलता आयी है, उसका मनोविश्लेषण करने में दीप्ति खण्डेलवाल सिद्धहस्त है। आज भी पुरुष का यह नारी पर एकाधिकार चाहता है। वह स्वयं तो स्वच्छन्द आचरण करता है, किन्तु नारी को उपभोग भी वस्तु बनाकर सहेज कर रखना चाहता है।[138] नारी आज भी अभिशप्त है, दीप्ति खण्डेलवाल विवाह-संस्था पर भी विश्वास नहीं करतीं।

मृणाल पाण्डेय आठवें दशक की सशक्त कहानी लेखिका के रूप में उभर कर सामने आयी है। इनकी कहानियाँ भी नारी-जीवन को ही केन्द्र रखकर लिखी गई है। अपनी कहानियाँ में अल्मोड़ा क्षेत्र के पहाड़ी जनजीवन और उसकी सांस्कृतिक चेतना को उजागर किया है। 'दरम्यान' (1977ई०), 'एक नीच ट्रैजेडी' (1981ई०), 'एक स्त्री का विदागीत' (1983ई०) आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है। इन्होंने नारी-स्वातन्त्रय के प्रश्न को अनेक बिन्दुओं और कोणो से उठाया। आनुषंगिक रूप से इनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन की आर्थिक तंगी, जड़ता संघर्ष और उसके फलस्वरूप उत्पन्न विसंगतियों के चित्र भी उभरे है। मृणाल पाण्डे आधुनिक भाषा बोध और यर्थाथ से दूर, रोमांटिक बोध को लेकर कहानियाँ लिखती हैं, जो मन को खुश तो अवश्य कर सकती है, परन्तु एक स्वस्थ चेतना नहीं दे सकतीं। 'आहटें', 'सख्य की ओर' तथा 'आतंक के बीच' की अधिकांश कहानियाँ इस तथ्य को उजागर करती है। 'मोहभंग' तथा 'वितृष्णा की ठोकर' इनकी सशक्त कहानियाँ हैं।[139]

मृणाल पाण्डेय का उपन्यास 'पटरंग पुराण' (1983ई०), विशेष रूप से चर्चित हुआ है। इसमें हिमालय में चित्र अंकित किये गये है। ये चित्र ग्यारह पीढ़ियों की इतिहास-गाथा से सम्बद्ध हैं। 'पटरंगपुर' के बसने और अनेक परिवर्तनों के बीच

T-7194 Aligarh Muslim University, Aligarh

से गुजरते हुए उसमें आज तक होने वाले बदलाव को दिखाने का पूरा प्रयत्न मृणाल पाण्डेय ने किया है। उपन्यास की भाषा की आंचलिकता उसके प्रभाव को कम कर देती है।[140]

सूर्यबाला युवा मन की निराशा और दिशाहीनता को आज के परिवेश की उपज मानकर प्रस्तुत करने वाली कहानी लेखिका है। 'एक इन्द्र धनुष जुबेदा के नाम' (1977ई०), 'दिशाहीन', 'थालीभर चाँद' (1988ई०) आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है। सूर्यबाला आज के जीवन की सच्चाई का पूरा-पूरा साक्षात्कार करना चाहती है। इनका कथा-फलक विस्तृत है। उनकी कहानियों में दूसरों की कमाई पर सुख-सुविधा का जीवन व्यतीत करते सेठ-साहूकार, ईमानदारी की सजा भोगते मध्यवर्ग के सामान्यजन, फैक्टरियों में खून-पसीना एक करते मजदूर तथा आर्थिक दवाब के बीच सगे सम्बन्धों को नकारने के लिए विवश मध्यवर्गीय परिवार आदि चित्रित है।[141]

सूर्यबाला ने अपने उपन्यासों में निम्नमध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी तथा आर्थिक दवाब से उत्पन्न विवशत एवं द्वन्द्व का चित्रण किया है। 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह के इंतजार तक' (1980ई०), 'अग्निपंखी' (1984ई०) आदि लघु उपन्यासों के माध्यम से लेखिका ने नारी-जीवन की त्रासदी का बड़ा ही द्राविक चित्रण किया है। प्रतिष्ठा के झूठे छद्म, रूढ़ियों की जकड़न और आर्थिक दबाव के चलते आज निम्नमध्यवर्ग किस प्रकार पंगु, निरीह और असहाय बन गया है। इसका लेखिका ने बड़ा ही सजीव चित्र अंकित किया है। सूर्यबाला का स्वर आशावादी है, उनका विश्वास है कि आज की नारी जिस दिन परम्पराओं और रूढ़ियों के छद्म को तोड़कर श्रमशील जीवन के महत्व को समझेगी उस दिन सब कुछ बदल जायेगा और उसका संघर्ष सार्थक हो जाएगा।[142]

संदर्भ संकेत

1. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी कथ्य एवं शिल्प, पृ० 13
2. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 14
3. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 17
4. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 20
5. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 20
6. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 20
7. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 20
8. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 21
9. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 21, 22
10. वही, पृ० 22
11. वही, पृ० 27
12. डॉ० अमर सिंह बधान/समकालीन हिन्दी कहानी, पृ० 19
13. वही, पृ० 19, 20
14. डॉ० सुरेश सिन्हा/हिन्दी कहानी: उद्‌भव और विकास, पृ० 194
15. डॉ० अमर सिंह बधान/समकालीन हिन्दी कहानी, पृ० 21, 22
16. वही, पृ० 30
17. गणपतिचन्द्र गुप्त/साहित्यिक निबन्ध/ पृ० 427, 428
18. वही, पृ० 428
19. वही, पृ० 428
20. वही, पृ० 428
21. उद्धृत द्वारा, सुषमा प्रियदर्शनी/हिन्दी उपन्यास, पृ० 9
22. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 9
23. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 13
24. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 13
25. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 13, 14
26. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 133
27. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 133

28. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 134, 135
29. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 139
30. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 143
31. वही, पृ० 144, 145
32. वही, पृ० 163
33. वही, पृ० 169
34. वही, पृ० 175, 176
35. वही, पृ० 184, 185
36. डॉ० अमर सिंह/समकालीन हिन्दी कहानी, पृ० 1
37. वही, पृ० 184, 1
38. वही, पृ० 184, 2
39. वही, पृ० 184, 2
40. वही, पृ० 184, 35
41. वही, पृ० 184, 36
42. वही, पृ० 184, 37
43. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प/ पृ० 78
44. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 78
45. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 78, 79
46. डॉ० पुष्पपाल सिंह/समकालीन कहानी: युग बोध का संदर्भ/ पृ० 81
47. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 82
48. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 82
49. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 82
50. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 82
51. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 82
52. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 83
53. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 83
54. डॉ० अमर सिंह वधान/समकालीन हिन्दी कहानी पृ० 3
55. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 3

56. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 3
57. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 4
58. वही, पृ० 4
59. वही, पृ० 4
60. वही, पृ० 5
61. डॉ० ज्ञानवती अरोड़ा/समकालीन कहानी: यथार्थ के विविध आयाम, पृ० 2
62. डॉ० अमर सिंह वधान/समकालीन हिन्दी कहानी, पृ० 5
63. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 81
64. वही, पृ० 127
65. वही, पृ० 128
66. वही, पृ० 2
67. वही, पृ० 3
68. वही, पृ० 3
69. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 4
70. उद्धृत द्वारा, वही, पृ० 4
71. वही, पृ० 3
72. वही, पृ० 3
73. वही, पृ० 1
74. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 158
75. वही, पृ० 157
76. वही, पृ० 159
77. वही, पृ० 159
78. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 165
79. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 162
80. वही, पृ० 163, 164
81. वही, पृ० 193, 194
82. वही, पृ० 194
83. डॉ० ज्ञानवती अरोड़ा/समकालीन कहानी: यथार्थ के विविध आयाम, पृ० 46

84. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 230, 231
85. वही, पृ० 187
86. वही, पृ० 230
87. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 190, 191
88. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 230
89. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 197
90. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 190
91. वही, पृ० 190
92. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 174
93. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 192, 193
94. वही, पृ० 231
95. वही, पृ० 188
96. वही, पृ० 238
97. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 185
98. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 192
99. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 173
100. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 185
101. वही, पृ० 185
102. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 203
103. डॉ० रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 186, 187
104. वही, पृ० 187
105. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 183
106. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 194
107. वही, पृ० 164
108. वही, पृ० 169
109. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प, पृ० 169
110. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 199
111. वही, पृ० 236

112. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 164
113. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 185
114. वही, पृ० 202
115. वही, पृ० 247
116. वही, पृ० 202
117. वही, पृ० 203
118. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 154
119. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 248
120. वही, पृ० 203
121. वही, पृ० 250
122. वही, पृ० 250
123. वही, पृ० 249
124. वही, पृ० 204
125. डॉ० सविता मोहन/समकालीन कहानी: कथ्य एवं शिल्प पृ० 183
126. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 205
127. वही, पृ० 257
128. वही, पृ० 206
129. डॉ० ज्ञानवती अरोड़ा/समकालीन कहानी: यथार्थ के विविध आयाम पृ० 107
130. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य पृ० 249
131. वही, पृ० 206
132. मधुरेश/हिन्दी कहानी: अस्मिता की तलाश, पृ० 113
133. रामचन्द्र तिवारी/हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 247
134. वही, पृ० 202
135. वही, पृ० 250
136. वही, पृ० 204
137. वही, पृ० 248
138. वही, पृ० 204
139. वही, पृ० 249

140. वही, पृ० 208

141. वही, पृ० 252

142. वही, पृ० 208